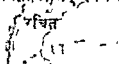
भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष पर प्रकाशित

श्री खरतरगच्छीय ज्ञान मन्दिर जयपुर
अभयजैन ग्रन्थमाला ग्रन्थांक–३३

अध्यात्म तत्ववेत्ता श्रीमद् देवचन्द्रगणि



रचित

द्रव्य प्रकाश

द्रव्य प्रकाश सार की लेखिका

विदुषी आर्यारत्न श्री सज्जन श्रीजी

आर्थिक सहयोग

पूज्य मुनि श्री जयानन्दजी के सदुपदेश से प्राप्त

प्रकाशक

अभय जैन ग्रन्थमाला

C/o अगरचन्द नाहटा

नाहटों की गवाड

बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशन संवत् २०३३ मूल्य ७) रु०

अन्य प्रकाशनों के लिए सूचीपत्र अलग से मंगावें।

अनुक्रमणिका

मुद्रक
हर्षगुप्त
राष्ट्रीय प्रेस,
डैम्पियर नगर, मथुरा।

भूमिका

भारत आध्यात्म प्रधान देश है। यहाँ ऋषि—मुनियो एव आत्मदर्शी साधको के चरणो मे चक्रवर्ती आदि सदा से नमन करते रहे हैं, अर्थात् बाह्य समृद्धि को यहाँ इतना महत्त्व नही दिया गया, जितना आत्मनिष्ट महापुरुषों को दिया गया है। उपनिषद् गीता, योगवाशिष्ट, जैन आगमो आदि अनेको जैन जनेतर ग्रन्थ आध्यात्मिक प्रेरणा देते रहे हैं। जैन तीर्थकरो ने तो स्वय भोगो को छोड कर त्याग का मार्ग अपनाया और आत्मा की सर्वोच्च-स्थिति 'मोक्ष को प्राप्त किया। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि' जिसने एक आत्मा को जान लिया, उसने सबको जान लिया।" और सबको जान लेने के बाद भी अन्तत मुख्य रूप से तो आत्मा को ही जानना होता है एव आत्म-विशुद्धि से ही मोक्ष मिलता है। इसलिए जैन दर्शन तो सर्वोच्च आध्यत्मिक स्थिति को ही महत्त्व देता है। आज के भौतिक वादी युग मे आध्यात्मिक प्रगति के लिए तीर्थकरो, सत—महात्माओ के वाणी का प्रचार बहुत ही जरूरी है, वही विश्व को शाति और कल्याण दे सकता है। इसलिए आध्यात्मिक साहित्य को अधिकाधिक प्रकाशित एव प्रसारित करना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत 'द्रव्य प्रकाश' ग्रन्थ भी उसी श्रेणी का एक परमोज्वल रत्न है, जिसके पठन पाठन से आत्म जागरण का आर प्रगति होती है।

जैन दर्शन के अनुसार यह विश्व छ द्रव्यो का समूह—समूमना है। उनमे से पाँच द्रव्य तो जड है, (१) धर्मास्तिकाय (गतिसहायक) (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) पुद्-

गलास्तिकाय और (५) काल। छठा द्रव्य जीवास्तिकाय, चैतन्य-ज्ञान स्वरूप है। अत: मूलतः जड और चैतन ये दो ही द्रव्य हैं। चैतन्य स्वरूप आत्मा अनादिकाल से पुद्गलास्तिकाय (जड़) के साथ रहने के कारण अपने स्वरूप को भूल चुका है और पुद्गलों के निर्मित-शरीरादि सभी दृश्यमान पदार्थों में मैं और मेरापना स्थापित करके कर्म-मल सचय करते हुए संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इस भवभ्रमण को मिटाने के लिए ही, आध्यात्मिक साहित्य के स्वाध्याय की आवश्यकता है।

प्रस्तुत द्रव्य प्रकाश मे जैन धर्म मान्य छः द्रव्यों का वर्णन है। इस ग्रन्थ के तीन द्वार है। उनमें से पहले में प्रारम्भिक भूमिका के ३९ पद्यों के बाद धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल इन चार द्रव्यों का विवेचन पद्यॉक ४० से ६६ तक किया गया है। दूसरे द्वार मे पुद्गल परमाणु और कर्मों का विवेचन ३५ पद्यों में किया गया है। तीसरा 'जीवद्वार' सबसे बड़ा है, जो १६८ पद्यों का है। इसमें पहले आत्माका स्वरूप बतलाकर फिर मुक्ति मार्ग का निरूपण पद्यांक ४५ से किया गया है। इसलिए तीसरे जीव द्वार को अनुवादिका सज्जन श्री जी ने पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इन दो भागो में विभक्त कर दिया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ के छट्ठे एवं अन्त के १५२ वे पद्य में कवि देवचन्द्र जी ने अपनी लघुता प्रदर्शित की है। पद्याक १५३ में पाठक हंसराज की १२८ पद्यों वाली जिस रचना का उल्लेख किया है, उसका अभी तक पता नहीं चल सका है।

द्रव्य प्रकाशकी रचना तत्कालीन ब्रज या हिन्दी भाषा में बीकानेर में रहते हुए देवचन्द्र जी ने भगवान ऋषभ देव जी के मोक्ष

के दिन अर्थात् स० १७६७ माघ वदी १३ को पूर्ण की है। इसमे सहायक 'दुर्गदास' का उल्लेख पद्याक १५८ मे किया है और पद्याक १५६ मे मुलतान के आध्यात्म प्रेमी मिट्ठूमल, भन्दास, मेउदास, मूलचन्द आदि श्रावको की धर्म—प्रीति के कारण इस ग्रन्थ के रचे जाने का उल्लेख किया है।

द्रव्य प्रकाश के तीनों ढालो मे क्रमश ६६, ३५ और १६८ पद्य हैं अर्थात् पद्य सख्या २६६ है। इसमे दोहा, सवैया (इकतीसा और तेईसा) छद का विशेष प्रयोग हुआ है। वैसे चौपाई, सोरठा, चन्द्रायणा, पधडी, अडिल, कवित्त, छप्पय और कुडलिया छद भी प्रयुक्त हैं। यद्यपि 'श्रीमद् देव चन्द्र' नामक ग्रन्थ मे यह 'द्रव्य प्रकाश' पहले छपा था पर पूज्य योगीन्द्र युग प्रधान श्री सहजानदघन जी की प्रेरणा से हमने श्रीमद् देवचन्द जी की पद्यबद्ध रचनाओ की पाण्डुलिपि हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर की है, इसी के अन्तर्गत हमारे 'अभय जैन ग्रन्थालय' और 'खरतरगच्छ के 'बडे ज्ञान भण्डार' की हस्तलिखित प्रति के आधार से इसका पाठ तैयार किया है। ग्रन्थ पद्य बद्ध और उसकी भाषा २६५ वर्ष पुरानी होने से पाठको को समझने मे कठिनाई होगी, इसीलिए विदुषी आर्यावर्य सज्जन श्री जी से इस ग्रन्थ का सार गद्य मे लिखवाके मूलग्रन्थ के बाद इस सस्करण मे दे दिया गया है। आशा है तत्त्व जिज्ञासु और आध्यात्म प्रेमी पाठक गण अब इस सस्करण मे अधिक लाभ उठा सकेंगे।

द्रव्य प्रकाश के रचयिता 'खरतरगच्छ' के महान् तत्त्वज्ञ विद्वान् श्रीमद् देवचन्द्र जी हैं। उनका जन्म बीकानेर के निकटवर्ती ग्राम निवासी लूणीया तुलसीदास की धर्मपत्नी धनबाई की कुक्षी मे स० १७४६ मे हुआ था। लघु वय में ही वे खरतर गच्छीय वाचक राजसागरजी के सानिध्य मे आ गये और १३ वर्ष की आयु मे तो

आपने उनसे दीक्षा भी ग्रहण कर ली। आपका जन्म नाम देवचन्द्र था, दीक्षा नाम 'राज विमल' रखा गया। आपने 'ध्यान-दीपिका चौपाई' आदि में अपने दीक्षा नाम 'राजविमल' का भी उल्लेख किया है' पर आपका मूल नाम देवचन्द्र ही अधिक प्रसिद्ध रहा। आपकी जीवनी के सम्बन्ध में तपागच्छीय कवि ने 'देव-विलास' काव्य बनाया है, उसके अनुसार बेनातट में दीक्षा गुरु राजसागर के दिए हुए सरस्वती मंत्र की साधना करके आपने सरस्वती की कृपा प्राप्त की। थोड़े वर्षों में ही आपने अध्ययन करके अच्छी विद्वत्ता प्राप्त कर ली। यु० जिनचन्द्र सूरिजी (चौथे दादा सा०) की परम्परा के वाचक राजसारजी थे। उन्होंने अपने शिष्य ज्ञान धर्म के शिष्य दीप चन्द, जिनका दीक्षा नाम राज हंस था, आपको उनका शिष्य घोषित किया था। अपने गुरुजनों के साथ आप सं० १७६५-६६ मे मुलतान पधारे। वहा उस समय कविवर बनारसी दास जी के आध्यात्म-मत का बडा प्रभाव था। उस 'आध्यात्म-शैली मे कई श्वेताम्बर श्रावक रंग गये थे, और जो भी श्वे० मुनि-यति उधर पधारते, उनसे वे आध्यात्मिक ग्रन्थों को सुनते एवं आध्यात्म चर्चा करके उन मुनियो को आध्यात्म रंग में रंग देते थे। इसी के फल स्वरूप खरतर गच्छीय कवि सुमति-रंग, धर्म-मन्दिर आदि ने प्राचीन आध्यात्मिक ग्रन्थों को राजस्थानी काव्य के रूप मे अनुवादित किया। जब श्रीमद् देवचन्द्र जी को भी उन अध्यात्म प्रेमी श्रावकों का सुयोग और सत्संग मिला तो उन्होंने भी सबसे पहले दि० शुभ चन्द्र के ज्ञानार्णव ग्रन्थ को आपने राजस्थानी भाषा मे ढाल बद्ध बनाया। ६ खण्ड और ५८ ढालों मे रचित उनका 'ध्यान दीपिका चतुस्पदी' की आपने मुलतान मे रहते हुए, वहाँ के आध्यात्म-वेत्ता भणसाली मिट्ठूमल के आग्रह से स० १७६६ के वैशाख वदी १३ रविवार को रचना की है। उसके बाद आपका बीकानेर पधारना

हुआ और स० १७६७ के माघ वदी १३ को 'द्रव्य प्रकाश' की रचना भी मुल्तान के उन आध्यात्म प्रेमी श्रावकों के लिए व्रज भाषा में पद्य बद्ध की। इसके बाद तो आपने और भी अनेक द्रव्यानुयोग के ग्रन्थ और विशेषत कर्मशास्त्रादिका का गम्भीर अध्ययन किया। साथ ही आध्यात्म का रंग भी उत्तरोत्तर गहरा असर करता गया। इसलिए जीवन पर्यन्त जैन तत्त्वज्ञान और आध्यात्म सम्बन्धी साहित्य प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती में प्रचुर परिणाम में आप रचते रहे है। उन सबको संग्रहीत करके प्रकाशित करने का श्रेय तपागच्छीय जैन योगीराज बुद्धि सागर सूरि जी को है, जो श्रीमद् देवचन्द्र जी के परमभक्त थे। उन्होंने स० १९६८ में देव चन्द्र जी रचित समस्त साहित्य को ढूंढकर प्रकाशित करने की प्रेरणा अपने आध्यात्म-प्रेमी भक्त जनों को और उसीके फलस्वरूप 'श्रीमद् देवचन्द्र' नामक ग्रन्थ दो बडे भागों में 'श्री आध्यात्मज्ञान प्रसारक मण्डल' से प्रकाशित हुआ। उन ग्रन्थो को आध्यात्म प्रेमी जनता ने खूब अपनाया अत उनको नये रूप में, पीछे से प्राप्त रचनाओं के साथ तीन भागों में प्रकाशित करने की योजना बनी। उनमें से प्रथम भाग में गद्य रचनाओं और द्वितीय भाग में पद्य रचनाओं का संग्रह स० १९८५ में प्रकाशित हो गया। आपकी संस्कृत रचना के संग्रह वाले तीसरे भाग का प्रकाशन नहीं हो सका। उक्त 'श्रीमद् देवचन्द्र' ग्रन्थके दूसरे भाग में यह 'द्रव्य प्रकाश' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था।

'द्रव्य प्रकाश' की रचना के बाद भी कई वर्ष श्रीमद् देवचन्द्र जी राजस्थान और पंजाब सिन्ध में विचरते रहे। स० १७७६ में आपने 'आगमसार' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना मरोट में रहते हुए दुर्गादास की सहाय से धर्म धर्ममित्र के लिए की थी। उसमें भी

'द्रव्य प्रकाश' मे वर्णित छ द्रव्यों का गद्य मे अच्छा वर्णन पाया जाता है। अत. "आगम सार" भी पाठकों को अवश्य पढना चाहिए। उसके दो हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके है। प्रथम चिदानन्द जी का दूसरा आनन्द सागर जी का है।

'आगमसार' की रचना के वाद स. १७७६ मे आपका गुजरात की ओर विहार हुआ। उस समय पाटन मे नगर सेठ तेजसी, सहस्त्रकूट जिनालय वना रहे थे। जव श्री ज्ञानविमल सूरि सहस्त्रकूट के नाम वतला नही सके तो देवचन्द जी ने वतला कर ज्ञानविमल सूरि को प्रभावित किया एवं गुजरात मे आपकी प्रसिद्धि वढ़ती गई। साध्वाचार में आई हुई शिथिलता का परिहार करके आपने किया उद्धार अर्थात् शुद्ध साध्वाचार का पालन प्रारम्भ किया। इस तरह ज्ञान और चारित्र दोनो मे आपने खूवउन्नति की। इसका प्रभाव गुजरात की जनता में दिनो दिन वढता ही गया। तत्कालीन गच्छनायक आचार्य शाखा के जिनचन्द्र सूर जी ने आपको 'वाचक' पद से अलंकृत किया। अहमदावाद मे तत्कालीन शासक रतनचन्द्र भण्डारी आपके आध्यात्मिक प्रवचनो से अतीव प्रभावित हुए। भण्डारी जी के युद्ध सङ्कट का भी आपने निवारण किया। पालीताने मे मृगीरोग को उपशान्त किया। मूर्ति-पूजा विरोधियों को समझाकर जैन मन्दिर और मूर्तियों के प्रति उनको श्रद्धा शील वनाया। आपके उपदेश से शत्रुञ्जय के कई वड़े-वड़े संघ निकले। मन्दिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठाएं तो अनेकों स्थानों में हुई। शत्रुञ्जय तीर्थ की व्यवस्था और जीर्णोद्धार के लिए 'पेढी' स्थापित हुई। तपागच्छीय अनेक मुनियो को आपने शास्त्राध्ययन कराया और यशो विजय उपाध्याय के ज्ञानसार ग्रन्थ पर सस्कृत मे ज्ञानमञ्जरी टीका वनाई। आनन्दघन जी चौवीसी के अन्तिम पार्श्वनाथ और महावीर स्तवन वनाके चौवीसी की पूर्ति की। आपने पुराने कर्म ग्रन्थो पर टवा लिखने के साथ-साथ कई नए कर्म ग्रन्थ भी वनाये।

आपने जो चौबीस तीथकरो, २० विहरमानो और अतीत चौबीसी के तीथकरो के स्तवन चौवीस बीसी आदि के रूप मे बनाये हैं, उनमे भक्ति और अध्यात्म का जैसा सुमेल हुआ है वैसा अन्य किसी भी कवि की रचना मे नही मिलता। इसीलिए श्रीमद् आनन्द वन जी की चौबीसी के बाद देवचन्द्र जी रचित चौवीसी का ही नाम लिया जाता है एव विशिष्ट गौरव प्राप्त है। आपकी जीवनी और रचनाओ के सम्बन्ध मे यहाँ अधिक प्रकाश डालना सभव नही है। स १८१२ के भाद्र बदी १५ को प्रहर रात्रि बीतने पर आपका स्वर्गवास अहमदाबाद डेलाका उपासरा मे हुआ। आपकी चरण पादुकाएँ आज भी अहमदाबाद के हरिपुरा मे स्थित जैन मन्दिर के सामन के उपाश्रय के मकान मे एक देहरी मे स्थापित है।

श्रीमद् देवचन्द्रजी की रचनाओ का गुजरात मे तो खूब प्रचार है। गुजराती भाषा मे उन्होने चौवीसी आदि पर तो स्वय विवेचन लिखा है। बीसी, अध्यात्म गीता आदि अन्य रचनाओ पर अन्य विद्वानो के विवेचन प्रकाशित हो चुके हैं पर हिन्दी मे आगमसार, नयचक्रसार आदि कुछ ग्रन्थ ही छपे थे। अत आपकी रचनाओ को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने की योजना बनाई गई है। आपके चौबीसी ओर स्नात्र पूजा तो हिन्दी अनुवाद के साथ जिनदत्त सूरि सेवा सघ से प्रकाशित की गई थी। अष्ट प्रवचन माता सज्झाय और पञ्च भावना सज्झाय हिन्दी विवेचन सहित अभय जैन ग्रन्थमाला मे मैंने प्रकाशित करवादी और आध्यात्म गीता हिंदी विवेचन सहित जैन-भवन, कलकत्ता से प्रकाशित हो चुकी है।

श्रीमद् देवचन्द्र जी के ग्रन्थों की खोज करते हुए कुछ अज्ञात रचनाए भी प्राप्त हुई, उनमे से छोटी-छोटी रचनाओ को तो हम प्रकाशित करते रहे हैं। स १९८४ मे प्रकाशित श्रीमद् देवचन्द्र भाग २

के अन्त मे कलकत्ते के गुजराती जैन सभा लाइब्रेरी मे प्राप्त अज्ञात अष्टरुचि सज्झाय मैंने सर्व प्रथम प्रकाशित करवाई थी। उसके बाद तो कई अज्ञात रचनाएँ प्रकाशित करवाता रहा हूँ।

श्रीमद् देवचन्द जी की रचनाओ के विशेप प्रेमी मुनि श्री जयानन्द जी का बम्बई मे चौमासा हुआ था तब श्री महावीर मन्दिर पायधुनी, श्री चिन्तामणि जी मन्दिर-बम्बई, खरतगच्छ सघ भुज, मांडवी ओर जामनगर से प्रकाशन सहायता भिजवाई थी। उसी से कीर्तिरत्नसूरि रचित नेमिनाथ महाकाव्य हिन्दी अनुवाद सहित अभय जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित करवा चुका हूँ। अब श्रीमद् देवचन्द्र जी के अप्राप्त अध्यात्म प्रबोध देसनासार का हिंदी अनुवाद पूज्या सज्जन जी से करवाके प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही द्रव्य प्रकाश को भी पू. सज्जन जी के अनुवाद के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ मे प्रकाशित किया जा रहा है। अतः मुनि श्री जयानन्द जी एवं पूज्या सज्जन श्रीजी का मै विशेप आभारी हूँ और प्रकाशन सहायक ट्रस्टीगण भी विशेप रूप से धन्यवाद के पात्र है।

हर्प है कि इसी तरह मेरी प्रेरणा से श्रीमद् आनदघन जी की ग्रन्थावली जयपुर से प्रकाशित हो चुकी है और श्री चिदानन्द जी की ग्रन्थावली भी कलकत्ते से छप रही है। पाठक श्रीमद् आनदघनजी, देवचद जी और चिदानन्द जी इन तीनो की अध्यात्मिक रचनाओ से अब खूब लाभ उठाएँ, यही सादर अनुरोध व शुभ कामना है।

श्री अगरचन्द नाहटा

———

जैन-अध्यात्मतत्ववेत्ता श्रीमद् देवचन्द्रजीगणि

रचित

द्रव्य प्रकाश

दोहा—अज अनादि अक्षय गुनी, नित्त चेतनावान।
प्रणमू परमानंदमय, शिव सरूप भगवान ॥१॥

अथ स्याद्वाद भाव को नमस्कार-सवैया इकतीसा

जाके निरखत सते थिरता सुभाव धरै,
वरै निज मोक्ष पद हरै भव ताव को।
करम को बंध वारै, मोह को विडार डारै,
सारै निज सम्पति वधार ज्ञान दाव को ॥
एकानेक रूप जानै, नित्यानित्य भाव ठानै,
आपा पर भेद करि ग्रहै स्व सुभाव को।
अमर त्रिगुण इद, कमजान सौ अफद,
नमत है देवचद स्याद्वाद भाव को ॥२॥

अथ अध्यात्म महात्म्य कथनम् सवैया-इकतीसा

अध्यात्म भाव को प्रभाव कहो कहा ताहि,
जाको महिमान ज्ञान जगत मे गायो है।

---

१ P अक्षय गुणी, नित्य, प्रणमु। २ ३,४ पद्यांक A और B प्रति मे नही है।

याहि को सभाव लहै आपा पर भेद गहै,
सम्यक सुभाव माहि वोधि वीज वायौ है ।
घातकी अघाती भेद, कर्म कौ मूल छेदि,
वेद[३] निजभाव को परम भाव आयौ है ।
ऋषभ देवाधिदेव अध्यातम भाव सेव,
अमल अखंड निज केवल को पायौ है ॥३॥

अथ मोह विलास कथन-सवैया इकतीसा

लह्यो ते आरिजकुल गुरु कौ सजोग वलि,
पूरव के पुण्यवल ऐसौ जोग लह्यौ है ।
अध्यातम ग्रन्थसार, सुणो कान धरी प्यार,
पीयो ताको रस निज तत्त्व शुद्ध ग्रह्यौ है ॥
तौभी यह तेरौ जीव, चाहत विषै सदीव,
भोग की ममत्वता सौ माचि राचि रह्यौ है ।
जग को जीवनहार, एतो सब मोहभार,
मोह की मरोर मे जगत लहलह्यौ है ॥४॥

अथ प्रथम द्वार षट द्रव्य के नाम सवैया इकतीसा

प्रथम जाण धर्म द्रव्य, दूसरो अधर्म द्रव्य,
तीसरौ आकाश फुनि लोकालोक मान है ।
चौथो काल द्रव्य एक, पुद्गल द्रव्य रूपी,
निज निज सत्तावत अनत अमान[५] है ॥
पांचों है अचेतन जु, चेतना सरूप लीयै,
छट्ठो ज्ञानवान द्रव्य चेतन सुजान है ।
स्यादवाद भाव लीयै तीनु अधिकार याकै,
ग्रन्थ कौ आरभ कीनो ग्रन्थ ज्ञान भान[६] है ॥५॥

---

५. P द्रव्य > फुनि, B लीय B सजान A नाव > भाव P लीये ।

कवि लघुताई सवैया इकतीसा

कोऊ बाल मदमति चित्तसौं करै उकति,
नभ के प्रदेश सब गनि देखौं करसौ ।
कोऊ जन छीन तन पुरातन वयातीत,
वचन सौं कहै ऐसैं जुद्ध करौ हरिसौं ॥
भूचर वामन सौ सकति बिनु कहै ऐसौ,
लखौ धरि भुजा मैं तो मेरु चूना करसौं ।
तैसे मैं अलप बुधि महा वृद्ध ग्रन्थ मड्यो,
पडित हसैंगे निज मान के गहरसौं ॥६॥

ग्रन्थ अधिकारी वर्णनम्-सवैया इकतीसा

परम धरम जांनि, करम भरम भानि,
नरम सभाव लहै धाम सौं उदासी है ।
आतम के निसगामी, ज्ञान के अतरजामी,
बाधा सौं विरचि नित राधा धाम वासी है॥
जान सौ जगत जानै, माल मर मैन जैसौ,
अमल अखड निज ब्रह्म के बिलासी है ।
ऐसे समकित धारी, सुद्ध नय के विचारी,
वदत है स्वच्छद ज्ञान के प्रकासी है ॥७॥

अथ देशविरति वर्णनम्-सवैया इकतीसा

अभक्ष्य के त्यागी, है परम रस पागी,
ऐसो परमा रिगगी, जिन धर्म के विनीत है ।
जातमीक गुन लहै, समता सुथिर गहै,
विषय कषाय माहि रग सौ विनीत है ॥

---

६ P काउ P° सा नर, P दश कर न P कोज P सा कह एसा जुद्ध करो हरि स P स, मर P A करसौ P बुद्धि A B वृद्धि P हसंगे।
७ P मरम>भरम P लहि B वाक्सौ P विरमि>विरचि ।

परम धीरज धरि, आतमीक वल करि,
समकित थिरकरि मिथ्यासौं अलीत है ।
मिण्ट मित थोव भापी, सिद्ध सुख अभिलापी,
इकवीस (२१) गुणधारी श्रावक पुनीत है ॥८॥

दोहा—साधक शिवके साधु मुनि, ताके भेद चियार ।
जिनवर[1] आचरज[2] पवर, उपाध्याय[3] अणगार[4] ॥९॥

अर्हंत की द्रव्य स्तवना-सवैया इकतीसा

जाकी देह दुति अति सोभित अनंत तेज,
जाकी तन चतुराई नाहि थान ओर है ।
जाही जिनराज के वचन को विलास मानो,
शिवपुर राह शुद्ध अनुभव कोरः है ॥
जाके अतिसै असद, वदे देव देवी वृन्द,
जाको ध्रम शासन परम सुख ठौर है ।
जाही के दरस सेती, सुख को परस होत,
ऐसो जिन देवचद विश्व सिरमौर है ॥१०॥

दोहा—द्रव्य स्तवना नाथ की, करतां पुण्य प्रकाश ।
आतम के गुन गावता, केवलज्ञान विलास ॥११॥

---

८. AB अभक्ष P यागी>पागी, P लहि समतानु धीर गहि PA अजीत >अलीत ।

९. P° को B ताकै B विचार>चियार P आचारिज प्रवर ।

१०. P ताही>जाही, P शिवपुरा राह P परसौहत>परस होत ।

११. A.P दवित स्तव नाना थकी, A को ।

अथ भाव स्तवनम् सवैया इकतीसा

लोकालोक भासक अनंत ज्ञान दृष्टि जाकी,
वीरज अनंत सु उखेरे कर्म कंद जू ।
चरण अनंतवर, लोकालोक भाव वर,
पुण्य पाप सों व्यतीत शुद्ध सुख वृंद जू ॥
वेद को न भेद, तीनो जोग को न खेद जहाँ,
चेतन प्रकाश भयो धर्म्म सों अफंद जू ।
ऐसे जिनराज निज ज्ञान मे विराजमान,
अमल अखंड मित ध्यावे देवचंद जू ॥१२॥

आचारिज स्तवना सवैया इकतीसा

पंचाचार पालै निज ब्रह्म को सभालै भालै,
टालै पर भाव सब शुद्ध भाव भावै है ।
परम धरम गहै, ममता सभाव वहै,
रहे न सराग चित्त नित्त शिव लावै है ॥
दुविध दया के धार, कीनो नारी परिहार,
परिगाह दूर डारि निरलोभी दावै है ।
पर व्याधि दूर टारै, राग द्वेष माह वारै,
ऐसे आचारजजी कों देवचंद ध्यावै है ॥१३॥

अथ उपाध्याय वर्णनम्-सवैया इकतीसा

नित्य सी अनित्य रूप, एकानेक को सरूप,
सद सद भाव स्यादवाद को सहाय है ।

---

१२ P सुन>शुद्ध, P वोन>वो न, २ B निषेदे जहा>न खेद जहा, P नित>मित ।

१३ P आचार्य स्तवना, A प्रति मे 'भावै' न होकर सब' के बाद 'पुष'पाठ है । AB गहै>वहै, परिग्रह P लोर लोभी दाव ह, P जिरा>जी को ।

द्रव्य अभेद नय, परजाय भेद नय,
सग नैगमादि नय संख[१] भेद थाय है ॥
द्वादशांगी सूत्र सार, पढावै सपरिवार,
साधै शुद्ध कारिज जे मोख के उपाय है ।
पंच महाव्रत पालै, दोप सव ही को टालै,
पूजनीक भव्यन कौ ऐसे उपाध्याय है ॥१४॥

अथ साधु स्तुति-सवैया इकतीसा

आतम राम के आरामी, निज सुख विसरांमी,
पुण्य के अकामी पाप दृष्टि सौ न काज है ।
इंद्री सुख की न आस, रहै जगसौ उदास,
परिग्रह हीन भी अजाची महाराज है ॥
मिथ्या सौ विमुख निज, ज्ञान भाव ही कै रुख,
मोख सनमुख सिद्ध सुख के समाज है ।
करम उदिक सेती करत है क्रिया कर्म,
सत्तावीस(२७) गुण धारी ऐसैं मुनिराज है ॥१५॥

दोहा—अविरत आदि अजोग लगि, यहै वन्ध को हेत ।
जो गुण जहां पूरण हुवै, सोई सिद्ध कौ खेत ॥१६॥

अथ मिथ्यादृष्टि हेय कथनम्-सवैया इकतीसा

आपकी न जानै परभाव ही कौ आप मानै,
गहिकै एकात पक्ष माच्यौ है गहल[१] मैं ।

---

१४. P सो, P कोशरूप>को सरूप P नै असंख भेद पाय है, P पठावै P कारिज, P मोक्ष P पूजनीक भव्य जीको A° भव्य जीव कौ> पूजनीकी भव्यन कौ ।

१५. P आत्माराम, P वीसरामी AB सो>सौ A परिगाह B परिगह P अजाचि P मोक्ष B समाजु AB उदीक P ऐसे क नित ।

१६. P लगी यहे ।

भरम में पर्यो रहै पुन्य कम ही कौ चहै,
वहै अहबुद्धि भाव थभ ज्यु महल मैं ॥
कुगति सौं डरै सदगति ही की इच्छा करै,
करनी मे थिर ह्वै कै चाहै मोख दिल मैं ।
स्यादवाद भाव विनु ऐसौ जो मिथ्यात भाव,
हेय रूपी वह्यो ज्ञान भाव के अदल[२] मैं ॥१७॥

अथ ग्रन्थारभ कौ नमस्कार

दोहा—छह्यौ भाव स्यादवाद कौं, जामै अथ विलास ।
समवित धारण ग्रथ यह, नामै 'द्रव्य प्रकास' ॥१८॥

शिष्य प्रश्न

दोहा—ज्ञान रूप आदेय जो, जानों चेतन सोय ।
जे अजीव फुनि हेय है, उन जानैं क्या होय ॥१९॥

अथ गुरु उत्तर कथनम्-सवैया तेवीसा

चेतन द्रव्य अनंत गुणाश्रित, ध्येय आदेय स्वभाव धरै है ।
आप विसारि वसै भव कीच मे, आप लखै शिव भाव चरै है ॥
इतै यह जीव पराई कुसगति, चचल भाव लीयै विचरै है ।
शिष्य संदेह निवारण कारण, त्याग स्वरूप वखान करै है ॥२०॥

दोहा—त्यागै परकौ जानि कै, गहै आपनौ जानि ।
यात दोनु भाव कौं, पडित करै वखान ॥२१॥

---

१७ P को>कौं, वे, माच्यो हे चहे, वहे ह्रक>ह्व क, मो।, मिथ्यात्व ।
१८ P छ्यो, कौ जामे वारण>धारण ।
१९ जान ।
२० P धरे, A वरै>चर P लखे B कुसगतैं P निवारा कारन B कारन।
२१ P त्याग, ग, कर, PB जान, P पाने, P को, करे ।

भेद ज्ञान वरणनम्

दोहा—भेद ज्ञान शिव माग है, ज्ञान गेय इहि मांहि ।
ध्यान ध्येय की शुद्धता, भेद ज्ञान विनु नांहि ॥२२॥

भेद ज्ञान मूल उभय नय वरनन-सवैया इकतीसा

शुद्ध नय निहचै जथारथ सरुपी सत्य,
व्यवहार क्रिया नय तातै विपरीत है ।
भेद ज्ञान कारन न होइ विवहार नय,
ज्ञान के निहार्‌ये वाको त्यागवो ही नीत है ॥
वस्तु को पिछानै निज शुद्धि कौ विशुद्ध ठानै,
शुद्ध नय सरुप ऐसौ सम्यक कौ मीत है ।
रतन त्रितय को सामी देव को अंतरयामी,
ऐसै शुद्ध नय सौ हमारी थिर प्रीत है ॥२३॥

पुन चंद्रायण

वाह्य लिग यह नय विवहारा,
तत्वहीन किरिया आधारा ॥
गहण जोग नय शुद्ध कहत विवेक मैं,
त्याग योग विवहार ज्ञान की टेक मैं ॥२४॥

शुद्ध नय महिमा

दोहा—पर विमुक्त यह आतमा, चिन्मय चंद समान ।
आदि मध्य नहि अत तसु, द्योतक निहचै जानि ॥२५॥

---

२२. P शिवमा गहे, P नाही । २३. P सुव B यथारथ AB व्यवहार, P निहार्‍यै याको, त्याग वैही, P गने B वांनै>ठानै, P नै>नय, B त्रिय>त्रितय AB अतरयामी P एसो>ऐसै ।

२४. P वाज>वाह्य AB कहैत, P ढेकमे ।

२५. P निहचे जान ।

शिष्य प्रश्न दोहा

कह्यो हुय व्यवहार नय, ज्ञान होत पर भेट ।
तो यह कैसे वरणयो, जिन आगम में एट ॥२६॥

अथ गुरु उत्तर कथनम्

सोरठा—जाणण आतम तत्त, निश्चै नय विवहार है ।
तीय प्रवृत्ति निमित्त, तिण दो नय जिनवर कह्या ॥२७॥

भेद ज्ञान महात्म्य कथन सवैया इकतीसा

जेते केई भव्य जीव लीन ज्ञान में सजीव,
करम के जाल को उघारे एक पल में ।
जाको मूल हेत एक भेद-ज्ञान ही को टव,
छेर ने विवेक की विचारें जेउ दिन में ॥
वध के विलास में मगन जउ आठों जाम,
परे भम जाल माहि रने जग जाल में ।
ते तो भेद-ज्ञान विनु निहचे फिरायो देव,
करम की गाट बांदे अज्ञान की चाल में ॥२८॥

अथ ज्ञान विलास कथन-सवैया इकतीसा

आपा पर भेद जीत आतमा स्वज्ञान लीन,
करम के पुञ्ज को न आने निज देश में ।
वसें निज गुन धारि भाम आप रूप राशि,
विराजें अखंड रूप आतम प्रदेश में ।
अनादि अज्ञान के वराय सो गड्यो है ग्यान,
भान जेसे दवि रह्यो घटा के प्रवेश म ।

---

२६ B तो यहो कसे वरणयो ।
२७ B तत्व, AB निमत्त ।
२८ P स्देव, तातत> ॥२२ में P विचार रातु गीत थ, रुज जातु ।

तैसे ए पुराण देव तत्त्व को पिछानै नाहि,
करम को करतार भयो परदेश में ॥२६॥

आतमा अकर्त्ता कथनम्–सवैया इकतीसा

सहज सुभाव अथ गुरु कै वचन सेती,
जान्यौ निज तत्त्व तव जाग्यो जीव राय है।
मैं तो परद्रव्य नांहि परद्रव्य मेरो नाहि,
ऐसी वुद्धि भासी तव वंध कैसे थाय है।
देखि जानि गहो तुम परम अनंत पद,
जाकै पद आगै और पद न सुहाय है।
प्रमाण निक्षेप नय जाकै तेज आगै अस्त,
ऐसो निज देव शुद्ध मोख को उपाय है ॥३०॥

अथ आतमा मुक्ति रूप वर्णनम्

दोहा—वधोदय दीरण प्रमुख, ए सब पुद्गल युक्त।
इनसौं पर निज तेजमय, मैं हौं कर्म्म विमुक्त ॥३१॥

आतमा थिर भाव कथनम्--सवैया इकतीसा

पवन कै थभ सो सुभाव थिर रहै जल,
तैसे ज्ञाता जीव होइ करम वियोग सौं।
जेते ज्ञान नाथ के लगै परभाव साथ,
ताते पर जानि दूर करै ज्ञान योग सौं॥
स्वयभू चेतन रूप, अमल अनत भूप,
ताकौ थिर ध्यान धर त्याग नातो लोग सौं।
आश्रव विनाश होते सवर सरूप भयो,
ताको वांध राखै कौन कम्म अभोग सौं ॥३२॥

---

२६ P वसि > वसैं, AB राशि > वासि, P वढावसि गड्यो हे घढा के प्रवेश मे, AB प्रदेश > परदेश। ३०. P स्वभाव, P नाही, भानि, जानी, A सुहात P निक्षेप, सुद्ध मोक्ष। ३१. P इनसो, मैंहु कर्म। ३२. P थीर, तेसो।

दोहा—परणादिक परभाव ए, है सब तन के अग।
नव नव रग गहै फिटक, पुड उपाधि के सग ॥३३॥

अथ आतमा फटिक दृष्टान्त कथनम्—सवैया इकतीसा

जैसे मणि फटिक सभाव निरमल रूप,
तसे थिर चेतन सदाइ निरमल ह।
तो भी राग दोप मोह अग्यानी उपाधि सेती,
वर्म्यो है ससार मे अज्ञान सों विकल[१] है ॥
तो भी तजै नाहि कब अपनो स्वभाव द्रव्य,
भूपन कहावै बहु वचन सकल है।
तम पक्ष राहु सग चन्द्र राहु योग भयो,
चन्द्र वहा तम होय नित्य जो विमल है ॥३४॥

ससारी आत्मा कथन—कवित्त छप्पय छन्द

पर परनति निज मानि, शुद्ध परनति पर जानै।
रागादिक सयोग, आतम परभावहि ठानै ॥
रागी रापी अह, एहु विभ्रम मल मिलीयो।
करै करम को बन्ध, फिरै जग मे हलफलीयो ॥
जिम भूत छाय जुत पुरष निज, भूत भाव कोइक कहै।
त्यो जीव एह अज्ञान वशि, त्रिविध भम वचन लहै ॥३५॥

दोहा—चेतन परकै जोग सा, परको करता होय।
यातै परको पर लख, तजै अकरता सोय ॥३६॥

निज उपादेय पर हेय कथनम्

दोहा—चेतन विनु जेते दरव, ते अशुद्ध पर हेय।
शुद्ध चेतना राजुगत, नित्य जीव आदय ॥३७॥

---

३३ P पदु, ३४ B तत>सेती, AB ता भी>तो भी,

पच द्रव्य जड हेय है, तौभी कहीऽ ज्ञेय।
तातैं वाखानी प्रगट, स्यादवाद नय लेय ॥३८॥

अथ द्रव्य लक्षण

दोहा—उपजै विनसै थिर रहै, यह सद् लक्षन जानि।
सत लक्षन कुञौ धरै, सोइ द्रव्य परवान ॥३९॥

द्रव्य चतुष्टय सरूप—सवैया इकतीसा

धरम अधरम द्रव्य नभ काल च्यारौ द्रव्य,
अरूपी अखंड जड भाव लीये वरतै।
तामै तीन अस्तिकाय काल विनु जिन कहे,
गहै गनधार तीन पद अनुसरतैं॥
च्यारौ निज गुनवान लछन निधान नित,
निज निज काज सारौ मिलै कौन परतै।
च्यारौ सौ वियुक्त नित अलिपत नभवत,
जीव तत्त सिद्ध होय भी समुद्र तरतै ॥४०॥

कालद्रव्य विनु तीन द्रव्य, सवैया इकतीसा

धरम अधरम नभ तीनौ को इकैक खध,
अकिरीय निरतर जैन मै वखानै है।
धरम अधर्म दोनु असख प्रदेशवत,
लोक असमान मान अचल कहाने है॥
नभ अंस है अनत लोकालोक मानवत,
गुण परजाय मत अकृत पिछानै है।
एतो उन सम तो भी ग्यान विनु ध्येय नाहि,
ध्येय एक जीव जो तो लोकालोक जानै है ॥४१॥

अथ धर्म द्रव्य लक्षण

दोहा—जो तौ पुद्गल जीव को, चलण सहाई होय।
आप अचल अक्रीय नित, धर्म द्रव्य है सोय ॥४२॥

---

३८. P कहियं>कहीइं, P वखानो।

अथ शिष्य प्रश्न

दोहा—शिष्य कहै सद्‌गुरु सुणो, यह हम मन मैं भम।
जग मे पुद्‌गल जीव कौ, कैसे प्रेरै धम ॥४३॥

गुरु उत्तर कथनम्

दोहा—जैसे जलचर जीव कौ, चलन सहाई नीर।
तैसे पुद्‌गल जीव कौ, चलन सहाइ वीर ॥४४॥

अथ अधर्म लक्षण

दोहा—अधम द्रव्य जो थिर करै, जोउ पुद्‌गल कौ साहि।
मध्य दीह ग्रीषम समै, ज्यु पत्नी तरु छांहि ॥४५॥

आकाश द्रव्य लक्षण

दोहा—जो देवै अवगाहना, सो आकाश कहैवाय।
गुण परजय जुत्त जासमै, पाचौ द्रव्य समाय ॥४६॥

अथ सामा य अष्ट गुण धरमादि त्रय कथन

कवित्त—छप्पय

पहिलौ अस्ति-सभाव, वस्तु-सभावता वीय गिन।
तीजो द्रव्य सरूप, गुन चतुथ परमेय पुनि ॥
पचम अगुरलघुत्व, छट्ठो सप्रदेश कहीजै।
सत्तम चेतनहीन, आठमो अरूप लहीज ॥
ए आठ द्रव्य के जाति गुण, कदा काल ना विभचरै।
धरमादि द्रव्य त्रय नित्य ए आठौं गुन नितप्रति धरै ॥४७॥

सवया इकतीसा

गति हेतु कह्यौ धम, थिर हेतु है अधम,
अवगाह दन तो आकाश ही कौ गुन है।

४४ P सहाए
४७ P परमात > पुनि

तीनौ ए विशेष गुन, कहे तीनों द्रव्य ही के,
अब गुन तीन विधि कहिवै को मन है ॥
द्रव्य को विशेष गुन, यहै असाधारन है,
साधारन गुन गत पद को कहन है।
अचेतन रूप विनु, तदुभय गुन कह्यौ,
गुन परजाय द्रव्य ज्ञान यौ गहन है ॥४८॥

द्रव्य पर्याय कथन-सवैया इकतीसा

गुण के विकार परजाय कह्यं जिनराज,
स्वभाव विभाव रूप ताके दोय भेद है।
शुद्ध परजाय तौ अगुरुलघु के विकार,
हानि वृद्धि रूप जाके वारह त्रिभेद है ॥
अनन्त असख्य सख्य भाग हानि गुण हानि,
ए तौ छहो हानि छहों वृद्धि यु अभेद है।
एतौ परजाय छहो द्रव्य को समान भाखै,
और परजाय गुन सुनन उमेद है ॥४६॥

विभाव पर्याय कथनम्

दोहा—खध थान गत भेद ले, कहनौ वचन विलास।
पर पर्यय धर्मादि कै, ज्यु घट मठ आकास ॥५०॥

आकाश द्विविध कथनम्

दोहा—सो आकास द्वै विध भयौ, यद्यपि है इक खव।
लोक अलोकनि कै सवै, कहौ लखन सनमव ॥५१॥
ध्रुव उतपादन अत जुत, जहाँ एक आकाश।
सादि अनत अपार जड, सो अलोक परगास ॥५२॥
जामै गुण पर्यायजुत, छहौ द्रव्य कौ वास।
आप असख प्रदेशधर, सो है लोकाकाश ॥५३॥

---

४६. P उरि>और

५१ P लोक अलोकनोके सवे कहो लक्षन सवध। ५२ P परकास

अथ शिष्य प्रश्न-सवैया इकतीसा

धर्म लोकाकाश मान अधरम ताके मान,
असंख्य प्रदेशी एक जीव यु अनंत है।
लोकालोक नभ मम पुद्गल अणु सुछम,
याके पे द्रव्य गर्भ वरतना अनंत है॥
आधार लोकाकाश सो प्रदेश त असंख्य राशि,
वास थान तुच्छ अरु आधेय महत है।
तातें कैसें ए समाय, कहो स्वामी को उपाय,
द्रव्य कोनि थिति की तो हम मन भ्रात[३] है॥५४॥

॥ अथ गुरु उत्तर कथनम्-सवैया इकतीसा ॥

जैसे एक जल ठाउ तदगित जल भृत,
तामें तदुचित सक्करा गलि जाय है।
ताम लूण खार रज मारि डार छार डारे,
तामें सूई की समूह सोभी ठहराय है॥
जैसे एक ठांउ माहि, पाचों वस्तु ठहराहि,
जलादिक तहतीव प्रगट दिसाय है।
तैसे लोकाकाश माहि, पाचो द्रव्य माय जाहि,
अवगाह गुन की सकति कहवाय है॥५५॥

॥ अन्यमती प्रश्नोत्तर कथन-सवैया इकतीसा ॥

अन्यमति पक्ष गहे कहे यही बात सब,
धरम अधम द्रव्य जग माहि नाहि है।
प्रतिक्ष दीसें नाहि, अनुमान ज्ञान नाहि,
उपमान शब्द माहि एतो न कहाही है॥
तातें जैन कहे कैसे अनुमान लें कें यथा,
इन्द्री अग्रहीत भाव जग माही होही है।

५४ p द्रव्य वाल ध सुछम p भ्रांति>भ्रत।
५५ वार>खार, सोभ समति>सकति।

गति हेत सोऊ हेत दधि युन घृत वत,
तैसे ए अरूपी नित्य द्रव्य जग माही है ॥५६॥

पुनः अन्यमतो प्रश्नोत्तर सवैया इकतीसा

कालवादी की उकति गति थिति रीत इत,
काल कै अधीन दीन हीन मत पीन है।
वुद्ध कहै काल गुन नव पुरातन पन,
दोय क्रिया एक द्रव्य कवहुं न कीन है ॥
पचभूत वादी कहै गति वाउ भूत छति,
थिति रीत समसत पृथवि आधीन है।
वुद्ध कहै वायु भूमि जीव पुद्गल दल,
वाकौ वल और याकौ वल तो नवीन है ॥५७॥

दोहा—याते पुद्गल जीव कौ, गति थिति हेत सदीव।
धर्म अधर्म दो द्रव्य जड़, इनकौ ज्ञाता जीव ॥५८॥

काल्य द्रव्य लक्षण

दोहा—वर्त्तन परिणति जासु नित, क्रिया परा परवान।
नव जीरण को हेतु जो, काल द्रव्य सो जांन ॥५९॥

काल द्रव्य गुण पर्याय कथनम् सवैया-इकतीसा

अस्ति आदि अष्ट गुन युत अप्रदेशी नित,
समै को मिलन विनु नाँहि अस्तिकाय है।
वरतना हेतु ए विशेष गुण कहै जिन,
अगुरुलघुत्व भेद जाकै परजाय है ॥
आवली[1] प्रमुख पर परजाय है अनत,
उतपाद व्यय ध्रुवमन्त कहिवाय है।
सो तो द्रव्य एक कहै समय अनंतवन्त,
नरखेत मित वरतना को उपाय है ॥६०॥

५७ A होय>दोय ६० याके

॥ शिष्य प्रश्न ॥

चौपाई—शिष्य कहै तुम काल परवाना,
मनुज खेत मित कह्यो मुजाना ।
उतपादादिक सत्र जग माही,
समै समै मे क्यु कहिवाही ॥६१॥

अथ गुरु उत्तर कथनम्–सवया इकतीसा

तब आचारिज एक गहै निजमत टेक,
कहै ऐसो बात परवान पक्ष गहिकै ।
नर खेत समै मित काल माहि तीनों होहि,
छहो द्रव्य माहि नित देखै ज्ञान लहिकै ॥
तातै उपदेश माहि कहै निज वैन ऐसे,
गहै गनधार सरधान शुद्ध वहि कै ।
देख्यो यु अनत जिन देखेंगे अनत फुनि,
देखत है भी अनत ज्ञान सरदहिकै ॥ ६२ ॥

अथ अ यआचारिज वचनम्–सवया इकतीसा

कहै आर गुरु काल द्रव्य है असख थिर,
रेणुक ए लोक परदेस परवान है ।
एक एक रेणुक मै अनत प्रगन होत,
समय सरव समै काज परधान है ॥
निज निज काज करै अनमिल पनै सदा,
यातै अस्तिकाय की कदापि न कहान है ।
अनत अनीतकाल ते तो अनागत भाल,
अप्रदेशी परिणामी काल द्रव्य मान है ॥ ६३ ॥

---

६२ P गहि>गहै । हीहि>होहि । नही के>लहि क । ६३ P असख्य ।
गाग>भाग ।

अथ निहचै काल स्वरूप कथनम्

दोहा—मनुज खेत मित जो कह्यो, सो व्यवहारी काल ।
निहचै पाँचौ द्रव्य की, काल वर्त्तना चालि ॥ ६४ ॥
काल द्रव्य उपचार है, पच अस्ति की चाल ।
और कथन सब शास्त्र के, सो उपचारी भाल ॥ ६५ ॥

अथ हेय उपादेय विवेचनम्-सवैया इकतीसा

उतपाद व्यय ध्रुवपनै जीव सम ए भी,
अगुरुलघुत्व पर्याय भी समान है ।
अरूपी अखंड अज अनादि अनंत संत,
अनमिल और सेती लोक कै परवान है ॥
इत्यादिक गुन सौ समान तो भी ए अजान,
तातैं ध्यान ध्येय नाहि ध्येय ज्ञानवान है ।
अनंत त्रिगुण साथ 'देवचद' गुणनाथ,
ध्येय उपादेय ब्रह्मज्ञान कौ निधान है ॥ ६६ ॥

॥ इति द्रव्यप्रकाश कौ प्रथम अधिकार समाप्तम् ॥

द्वितीय-अधिकार

दोहा—वरनै च्यारौ द्रव्य पर, जेह अरूप अजांन ।
अब वरनौ सछेपसो, रूपी जड परमानु ॥ १ ॥

अथ आतमा करम योग कौ दृष्टांत-सवैया इकतीसा

जैसै नीरनिधि नीर समीर की भीर सेती,
उछरै उत्ताग अति चंचलता विलसै ।
डोलत नदी को नाथ चपल कल्लोल साथ,
रंच न सुथिर होइ आकुलता मिलसै ॥

---

६४. P वृत्तना । ६५. P चाली. भालि । ६६. P ०वँ परजाय, प्रवान<परवान । १. P सक्षेप, परमान

तैसे ए चेतन भूप अमल अडोल रूप,
अखड अनत ज्ञान शुद्ध रस मे वसै ।
सोई जीव कर्म प्रेरयो मोह कै पवन घेरयो,
फेरयो फिरै ममता सौ क्षोभ भाव को धसै ॥ २ ॥

पुन दृष्टांत

जैसे माटी जल सग घट दीपकादि चग,
नव नव भाव धरै मृद रूप वोइ है ।
तैसे कर्म जल जोग जीव च्यार गति रोग,
लहै पै अखड ध्रुव चेतनत्व सोइ है ॥
ऐसो निज गुनवत अमल अखड सत,
ताहीको सरूप गहै सिद्ध रूप जोइ है ।
कहै 'देवचद' वदि ऐसे चिदानद विनु,
मोख को साधक भइया और नही कोइ है ॥ ३ ॥

पुद्गल द्रव्य लक्षण

दोहा—पूरन गलन सभाव धर, अस्तिकाय मूर्त्तीक ।
फरस वरण रस गध मय, पुद्गल द्रव्य सुठीक ॥ ४ ॥

अथ पुद्गल गुण पर्याय कथनम्-सवया इकतीसा

जाके मूल गुन गनि रूपी अचेतन भनि,
अस्तिपन आदि षट आठ ओघ गुन है ।
पूरन गलन रूपी अणु कौ विशेष गुन,
यहै अरु धारन कै उर माहि जैन है ॥
हानि वृद्धि षट विध मूल परजाय जाके,
द्वयणुक प्रमुख खध परजाय आन है ।
एक वरण एक गध एक रस द्वै फरस,
पाचौ गुन याकै मूल परियाय जान हैं ॥ ५ ॥

---

२ P क्रोध सो>कौं धर्मै । मोक्ष । ५ P असाधारन-<अर धारन । A ओर >उर । याके द्वणुक । AB परय-यजन है । P आने है, परीयय जाने ह।

पुद्गल द्रव्य सम्बंध

दोहा—अन्य खंध सौं मिलन की, यामैं सकति सदाय।
यातैं परनांमी प्रगट, अस्तिकाय कहिवाय ॥६॥
पुद्गल द्रव्य अनत है, सब नभ अस समान।
ताके खंध अनत है, नरद[1] पास रांठान ॥७॥
सो पुद्गल है दोय विध, इक अणु दूजो खंध।
खंध दुविध एक जीव विनु, बीय कर्म को बंध ॥८॥

पुद्गल खंध स्वरूप—सवैया इकतीसा

छुटे अनु है अनंत ते भी खंध मे मिलत,
अनु के सकंध होय खंध अनु होय है।
जेते अणु है अनंत तेते खंध होय नांहि,
ऐसी बात कहै सोतो मूरख अवोह है॥
तासौ कहै द्रव्य पुद्गल परावर्त्त काल,
मिलै कैसी भाँति जाकी पुद्गल सोह है।
अणु गति जीव सम थिति है अमित नित,
कही अनु बात अब खंध को प्रवोह है ॥९॥

पुद्गल पर्याय कथन

दोहा—छाया आलप तेज तम, सबद बंध लघु थूल।
विछुरन मिलन प्रवाह गति, इनको पुद्गल मूल ॥१०॥
केइ इद्रीगम्य है, कै अगम्य निरधार।
सख असख अनत अनु, त्रिधा खंध विस्तार ॥११॥
ज्ञानहीन जड़ हेय सब, उपादेय जीउ सार।
अब बरनौ निज ज्ञान हित, कर्म बंध विस्तार ॥१२॥

---

६. P कहेवाय। ९. P तासं > तासौ। थीति है अमीत > थिति है अमित।
११. P केइ > के।

अथ कर्म हेतु कथन—सवैया इकतीसा

पंच मिथ्या तो प्रपंच अविरति बारह सच,
पच्चीस कषाय योग पंद्रह है।
एते सत्तावन हेतु कर्मबंध ही में लेत,
ताके भेद चौ प्रकृति थिति रस देश है॥
प्रकृति स्वभाव थिति काल ठहराव गन,
चिकणाई रस समुदाय परदेश है।
करें निज निज काज भाव कर्म के समाज,
मोदक को दृष्टांत च्यारे में अवश्य है॥१३॥

कर्म अष्ट प्रकार कथन—सवैया इकतीसा

प्रथम ज्ञानावरणीय ज्ञान को (अ) छाद लेय,
आन पर पट जैसे ढाको सब दाव है।
भेद मति आदि पंच ढाको निज गुण वर्चे,
क्षायक क्षयोपशम यामें दोय भाव है॥
दरसन उदेदा दर्शनावरणीय,
प्रतीहार सम ध्रुव वर्या ठहराव है।
दर्शनावरण च्यार नींद पांच प्रकार,
तामें दोय भाव मोह दृष्टि को उपाय है॥१४॥
वेदनी करम भव अव्याबाध गुण हर,
ताके दोय भेद एक साता औ असाता है।
असाता को भाग दुख साता हेतु सुख होत,
मधु लग खड्ग अगियारा को बताता है॥
मोहनी के द्वय भेद दर्शन चरण जाप,
दर्शन में मोह भेद अब मैं कहात है।
मिथ्या मोह मिश्र मोह समकित-प्रकृति मोह,
तीनोंह प्रकृति निज गुण करें घात है॥१५॥

---

१५ ? केरवी।

मिथ्या मत वरणन—सवैया तेवीसा

देह सौं प्रीत प्रतीत अनीत सौं,
पुण्य की रीत सौं जाकी मिताई।
जीव अजीव विवेक की टेक न,
जानत ना कछु आप पराई॥
करै वहिरंग दयादि क्रिया फुनि,
अन्तर* ज्ञान भगति न पाई।
'चंद' कहै जिनचंद कृपा वगि,
ऐसी मिथ्यामति जाइ पुलाई॥१६॥

मिश्र दृष्टि वरणन

दोहा—वीतराग कै वचन पै, नांहि राग ना द्वेष।
फल भक्षी नर अन्न जुं, मिश्र मोह से लेख॥१७॥

सम्यक् दृष्टि लक्षण-सवैया इकतीसा

जाकी तन प्रीत नांहि साता पर भीति नांहि,
ज्ञान रीति लीयो निज नीत मांहि वसे है।
निसकादि अप्ट सिप्ट इप्ट निज गुण तिप्ट,
अतरग वहिरग संत रस लसै है॥
इद्री सुख सुं विमुख सिद्ध सुख सनमुख,
निज ज्ञान रुख सौं कलुप भाव नसै है।
वरतै धरम राग देवादिक पै सराग,
याते समकित मोह राग संग हसै है॥१८॥

समकित मिथ्या लक्षणम्

दोहा—मिथ्या मोह अशुद्ध दल, शुद्ध सो समकित नाम।
श्रद्धा सुचि रुचि तोहि सहि, अतीचार परनाम॥१९॥

---

१६ P. टेक। १७. A B सों>मे।

चरित्र मोहनी के भेद

चौपाई—चरन मोह के द्वै परकारा,
तहां कषाय का बहु विस्तारा।
नो कषाय की नव विध धारा,
अब वरनौं लछन परचारा ॥२०॥

आयु कर्म भेद

दोहा—भव विपाकि गल जेल सम, अनवगाह कौ वेद।
नर नारक तियग् अमर, आउ कर्म चौभेद ॥२१॥

नाम कर्म भेद

दोहा—नाम कर्म के भेद बहु, वरनत बढ़ै गरथ।
तातैं वरनौं नाम कछु, जासौं कछु अरथ ॥२२॥

सवया इकतीसा

पैंसठि[२१] प्रकृति पिंड, अठाईस[२२] है अपिंड,
सब मिल्या नाम भेद तिरानु कहान है।
तन पंच दश माहि, पांच की गहन कीजै,
वरनादि बीस माहि च्यारोइ गहन है॥
तब सड़सठि[२३] भेद, नय बंध माहि गहे,
उदय उदीरना म इहूं को मान है।
सत्ता के महल माहि आनव[२४] को है उछाहि,
देवचंद कर्ममुक्त सदा गुन थान है ॥२३॥

अथ गोत्र कर्म भेद

दोहा—ऊँच नीच दो भेद का, गोत्र कर्म जड मानि।
रूंदै निज गुन अगुरुलघु, कुम्भकार सम जानि ॥२४॥

---

२० B चारत>चरन AB प्रकारा>परकारा।

२१ P पिरग। २२ B वरनन। २३ P कहान। २४ P मान>मानि।

अन्तराय केपांच भेद

दोहा– दान[१] लाभ[२] बल[३] भोग[४] कौ, बलि उपभोग[५] प्रकार।
इन पाचौ को मूंद लै, अंतराय सो धार ॥२५॥

अष्ट कर्म उत्कृष्ट थिति कथन

दोहा—ज्ञान दंसनावरण अरु, वेदनीय अतराय।
इनकी कोड़ाकोड़ि थिति, सागर तीस कहाय ॥२६॥
सित्तरि कोडाकोडि थिति, मोहनीय के दीस।
सागर कोडाकोडि थिति, नाम गोत के वीस ॥२७॥

अष्ट कर्म जघन्य स्थिति

दोहा—पञ्च कर्म्म की जघन्य थिति, एक महूरत होय।
परम देव अर नरक की, सागर तेतीस जोय ॥२८॥

अथ रस बन्ध कथनम्

दोहा—सर्वघाति उत्कृष्ट रस, देस घाति को मध्य।
गुन अघाति कौ हीन रस, आगम माहि प्रसिद्ध ॥२९॥
वरण गध अरु फरस तैं, रस अनंत गुन होय।
कर्म माहि रस अनंत बिनु, कर्म न वँधे कोय ॥३०॥

अथ प्रदेश बन्ध अष्ट वर्गना कथन—सवैया इकतीसा

उदारिक वैक्रिय आहारक तेजस औ,
भासा सासोस्वास मन कारमण अन्त है।
एकाणुक आदि ले अभव्य जीव सौ अनत,
ऊदारिक अगहन गहन अनत है ॥
वैकरिय अगहन ताही सौं अनन्त तासौं,
वैकरिय गहन वरगना अनन्त है।
आठौंइ अनन्त पुद्गल दल वृद्ध मंत,
इन सौं विमुक्त देवचद महासंत है ॥३१॥

---

२६. P दर्शनावरण। ३१. P वैकरीकी > वैकरिय, वैक्रिय।

अथ कर्मदल विभजन यथा–सवैया इकतीसा

परयो मोह कम पास बँधे आठ कम फाग,
तव सब थोरे अणु आउ के पखानीयें।
तातें नाम गोत कम्म अणु है अधिक तातें,
ज्ञान दसनावरा अन्तराय ठानीयें ॥
ताही ते अधिक मोह कर्म परमाणु होय,
ताहि त अधिक वेदनीय कै पिछानीयें।
यातें सुख-अणुदत वेदनी प्रगट माहि,
मरम निरस रुप भोजन ज्यु जानीयें ॥३२॥
दोहा सब घाति परमाणु अति, देश घातकी हीन।
विभजें बध समें तुरत, शक्ति जीव की पीन ॥३३॥

–जीव महिमा कथन

दोहा—इत्यादिक बहु कम दल, इनमें लपटयो जीव।
ताहै विविध विध बधर्णी, तो भी मुक्त सदीव ॥३४॥

आतम महिमा–सवया इकतीसा

पुद्गल है प्रगट चेतन है गुम रुप,
अणु मूर्त्तीव ठीक जीव मूरती न है।
पुद्गल है अजान जीव लोकालोक जान,
ध्यानादिक गुणधान थिरता मे लीन है॥
चिरकाल कम संग रह्यो ता भी वम मुक्त,
विवहार पक्ष गहे कम के अधीन है।
अक्षर निगुण इद दवचद ज्ञान वृन्द,
अक्षर सभाव लीयें अक्षय रस पीन है ॥३५॥

॥ इति द्रव्य प्रकाश को द्वितीय द्वार सम्पूर्णम् ॥

---

३२ P ताहिके > ताही त, नाहि > माहि। ३३ P घात पै।

तृतीय जीव द्वार

दोहा – वरण्यो पुद्गल द्रव्य को, सक्षेपै अधिकार।
अब वरनौं सक्षेप सौं, जीव द्वार सुविचार ॥१॥

जीव लक्षण

दोहा – तिहु काल जयवत जो, चेतनता गुन खानि।
लिपै न परके लेप सौं, सोऊ जीव वखानि ॥२॥

जीव स्वभाव कथन–सवैया इकतीसा

करम को करता न भोगता न करम को,
आतम धरमवंत परम अफंद है।
असंख प्रदेश धर चेतना रमणिवर,
अस्ति आदि पट परकार गुन कंद है॥
परभाव भावित पै सदाई अपरभाव,
निज परभाव भव भीति सुं अमंद है।
अनत प्रमोदवत संत सत्तावंत सत,
अक्षर त्रिगुण इंद सदा देवचन्द है ॥३॥

जीव द्रव्य के च्यार पर्याय कथन–सवैया इकतीसा

मूल परजाय है अगुरुलघु को विकार,
पट हानि वृद्धि रूप द्रव्य कौ सरूप है।
पर परजाय नर नारकादि अवधार,
मति आदि परजाय व्यञ्जन अनूप है॥
स्वभाव द्रव्य व्यञ्जन ए परजै चरम तनु,
तातै न्यून सिद्ध अवगाहना अरूप है।
अनत चतुष्क गुण व्यजन के परजाय,
निज काज करतार निज गुण भूप है ॥४॥

---

३. P असख्य।

एक द्रव्य एक क्रिया करे यह कथन

चौपाई—दाय द्रव्य एक किरिया न करै,
दो किरिया एक द्रव्य भी न धरै।
एक वस्तु एक किरीया ठानै,
यह यथाथ जिनराज वखानै ॥५॥

शिष्य प्रश्न—सवैया इकतीसा

निहचै अशुद्ध नय व्याप रागादिक चय,
ताही को व्यापक होय कर्म सो करतु है।
सोई व्यवहार लहि वेदक सभाव गहि,
गत समय कृत क्रिया फल को गहतु है॥
कृत कर्म भोगता है नूतन को करता है,
एक समय एक जीव क्रिया दो धरतु है।
हमको सदेह एह कहो गुरु गुन गेह,
तुहारे सिद्धांत बीचि कैसो अभिमनु है ॥६॥

अथ गुरु उत्तर कथन—सवैया तेवीसा

शुद्धपन अपनै गुन को, करता यह जीव जथारथ एही।
ज्ञान सरुप अनूप सध, गुण राशि बधै गत रोष अनेही॥
आजत कम्म करै पर योग, विभाव सयोग अज्ञान को गेही।
ताही त द्रव्यत कर्म उपाधि, लग जीउको किरिया द्वय केहो ॥७॥

दोहा—चिद्रूपक रागादि पर, कीनै ताकै रोध।
द्रव्य कर्म को राध कै, तातै निमन बोध ॥८॥

सवैया इकतीसा

ज्ञान रूप ज्ञान माहि क्रोध भाव क्रोध माहि,
ज्ञान क्रोध एकता न होय कहूँ थान मैं।

---

५ P दाय, दय, भिन्न > भी न। ८ P चिद्रुप > चिद्रूपक, ह > कै।

नांहि कर्म हेतु खेद मार्गना को भयो छेद,
ध्यान ध्याता भेद न न वचन तरंग है ॥
शांत ध्रुव निरुपाधि छीन पर क्रिया व्याधि,
पर द्रव्य न असेस लेस न अनंग है ।
ज्ञान ज्योति भासमान रतन त्रितय कौ जान,
ऐसौ शुद्ध नित्य देव मेरे घट संग है ॥१७॥

भेद ज्ञान महिमा कथन—सवैया इकतीसा

ऐसैं कोऊ जैन नर भेद-ज्ञान भाव धरि,
जीव कर्म भेद कीनौ हंस क्षीर नीर ज्यौं ।
मोह को विनाश कीनो आतम गुन गह लीनो,
भीनो शुद्ध धरा माहि जैसे जय वीर ज्यौ ॥
आप विषे थिर भयो आपही आनन्द रूप,
शुद्ध स्वीय ध्यान ध्येय ध्याता होय वीर ज्यौं ।
शुद्ध वुद्ध वढ्यो दूनो मूनो भयो कर्म पूर,
ऊनो[1] कीनो राग दोष पायो भव तीर ज्यौ ॥१८॥

स्यादवाद शुद्ध चेतना स्वरूप कथन—सवैया इकतीसा

जामै उतपात व्यय ध्रुव धारा तीनो एक,
समै वीचि[2] होइ रही गुन पर्यँ ज्ञान मैं ।
एक है अनेक है कि करता अकरता है,
भोगता अभोगता वखान्यौ जिन वान मैं ॥
वुद्ध शिव ब्रह्मा रूप मति चेतना सरूप,
पूरन प्रकाश भये जिन जैन थान मैं ।

---

१७. P नत>नन, छिन्न>छीन । १८. P वर्यो>वढ्यो ।
१९. P यान>वान ।

१. कम, २. मध्य ।

ऐसो शुद्ध चेतन तनकि[३] तन सगति सौं,
नट जैसे बाजी खेलै ,भव के चौगान मे ॥१९॥

शिष्य प्रश्न

दोहा—शिष्य कहै सद्गुरु सुनो, यह हम मन सदेह।
जाति भेद तें क्यु भयो, जड चेतन को नेह ॥२०॥

गुरु उत्तर कथन

दोहा—विष पुद्गल मूर्छा करै, मदिरा सें भ्रम भाव।
चमक[४] मै आकर्ष गुण, नव नव पुद्गल दाव ॥२१॥
त्यु ज्ञानावरणादि तनु, शक्ति जीउ की तोरि।
करहि विकल अज्ञान सों, फेरे भव की दोरि ॥२२॥

शिष्य प्रश्न

दोहा—हे स्वामी अणु द्रव्य मैं, एती शक्ति न होय।
जीव ज्ञानता मूद लें, चेतन को गुन खोय ॥२३॥

गुरु उत्तर कथन—सवैया तेवीसा

कोउ पुमान पीयै मदपान ज्यु,
होय विशुद्ध करै विकलाई।
बुद्धि की वृद्धि करै घृत ब्राह्मी को,
मूर्छित जीव हुवै विष खाई॥
दर्शन कर्म उदै लहै नींद कौ,
जीव को जानपनो मत्र जाई।
त्यु यह पुद्गल कर्म के खंध,
मिलै जीउ शक्ति की लेहु दबाई ॥२४॥

---

३ क्षणिक, ४ चुम्बक।

दोहा—छतो अज्ञान अनादि कौ, जीउ कौ करै विकार।
अछती वात न होय कब, गगन कुसम ज्युं धार ॥२५॥

शिष्य प्रश्न—सवैया इकतीसा

शिष्य कहै सत्तारूप स्वभाव विभाव मानै,
एकता प्रसंग होत द्वैत भाव नसै है।
अनुग्रह उपाधित वस्तु शक्ति कौ प्रकाश,
ताही कौ विनाश दोनु पुग्गल मे लसै है॥
अनादिता कहै याकौ प्रसग अनंत होत,
जैसे ज्ञान चेतन की योग सदा वसै है।
एतौ दोपवत वानि तुम्ह कही कहा जानि,
गुरुजी हमारो चित्त संशय मांहि वसै है ॥२६॥

गुरु उत्तर कथन

दोहा—मिलै हेतु विनसै जबै, वस्तु अनादि जु सान।
कर्म भव्य के त्युं नसै, कनक मैल दृष्टांत ॥२७॥
आतम करै निज भाव कौ, न करै पर परिनाम।
स्व स्वभाव किरिया करै, सो पावै शिव ठाम ॥२८॥
असद्भूत निहचै करै, भाव कर्म्म ए जीव।
जीव कर्म की फुनि ग्रहै, नय विवहार सदीव ॥२९॥

शिष्य प्रश्न—सवैया इकतीसा

व्याप अरु व्यापक को भाव इष्ट कह्यो शिष्ट,
करता करम कौ या नित्य ही की रीति है।
ताहि कै अभाव कैसे द्रव्य कर्म पुद्गल,
करैगौ चेतनराम तासौ जौ व्यतीत है॥

---

२६ P उपघात>उपाधित, एते>एतौ।
२७. P पु नसै>त्यु नसै।

व्याप्य अरु व्यापकता तनमय गुण संग,
परभाव संग ताको कहिवो अनीत है।
सद मै अभाव होत परम तो करतार,
अनादि अनत जी को करनै की भीत है ॥३०॥

गुरु उत्तर कथनम्—सवैया इकतीसा

कम को निमित्त कहै आतमा के परिणाम,
आतम परणाम को निमित्त पूर कम है।
यातै दुहू भावनि को हैतु हेतुमत भाव,
लगि रह्यौ परभाव मेरो एतो भम है ॥
जैसैं लोह कम को निमित्त कह्यौ चुम्बक को,
चुम्बक की शक्ति को निमित्त लोह कम है।
ऐसैं जीव कम को सयोग लगो रह्यौ तो भी,
निह्चै विचारैं भिन्न कम जीव धम है ॥३१॥

अथ मीमासक मत कथन जन उत्तर सहित–सवैया इकतीसा
मद कहैं सुख दुख भव शिव आदिक की,
करता प्रकृति एक जीव ब्रह्म न्यारो है।
करता न काहुको है भोगता न होय काको,
करतादि याको सब प्रकृति को प्यारो है ॥
तामों कहै बुध भैया शिव भेद दोनु क्रिया,
एक करै ऐसो बोध कहा सु विचार्यो है।
सुख दुख की निमित्त प्रकृति कही सो सत्त,
ताको ताको कारिज को कर्त्ता भोक्ता धार्यो है ॥३२॥

---

३० P जीव कहीन > जी को करने। ३१ P भावऩी को > भावनि कौं।
३२ P काक > ताको।

जिन वचन

दोहा—कर्त्ता भोक्ता ज्ञान कौ, निहचै ब्रह्म सदीव।
करै भोगवै कर्म कौ, विवहारै यह जीव ॥३३॥

ब्रह्मवादी मत कथन—सवैया इकतीसा

ब्रह्मवादी कहै ब्रह्म एक है अखड सो तो,
ध्रुव ज्ञान मुद्रा धरि वैकुंठ में रहै है।
ताके सव अश एते दीसै जग मांहि जेते,
जड़ ज्ञाता नव नव सव वास लहै है॥
पूर्ण नित्य ब्रह्म ज्योति ताकी इच्छा जव होत,
तव ताही अंग कौ भी वैकुंठ मे गहै है।
ऐसो शुद्ध ब्रह्म 'देवचंद' निजाधीन वसै,
ताकी कर्म वशि सुखि दुखि कौन कहै है ॥३४॥

ताको जैन उत्तर कथन—सवैया इकतीसा

जैन कहै ब्रह्मरीत इच्छा भावसौं अतीत,
गत दोप मोखमय इच्छा दोप ठानीयै।
असंख प्रदेशी भी अखंड त्रिहुंकाल सदा,
ताके खड करिवै को हेतु कौन जानीयै॥
तातै जीव है अनंत निज ज्ञान गुणवत,
नित्यानित्य भाव मंत शुद्ध नै वखानीयै।
तामै जे विभाव वशि तेते भववासी कहै,
जेते कर्म मुक्त तेते सिद्ध वुद्ध मानीयै ॥३५॥

अथ बौद्ध मत कथन—सवैया इकतीसा

वुद्ध कहै प्रथम समै मै जोउ जीव हुंतो,
दुतीय समै मै सोउ जीव वस्तु नांही है।

---

३३. P सदैव ।

करता है कर्म को जो सो तौ भोगता न होय,
करै और लहै और मेरे मत माही है ॥
जैसे जीव तैसे और वस्तु सब युही मानै,
जानै न सरूप शुद्ध वुद्ध रीति साही है।
परजै सभाव को सवया द्रव्य कहै,
रहै मदमत्त निज बोध धारा ढाही है ॥३६॥

जन कथन—सवैया इकतीसा

जैन कहै वस्तुरीत नियत दरव नय,
नित्य निराबाध परजाय नै अनित्य है।
समै समै नयो होय तव कैसे ऐसी वात,
जानै यह मेरो कीनो यह मेरो इत्य है ॥
वालपनै कीनो काम वृद्धपनै याद आवै,
एकात अनित्य पक्ष गहना असत्य है।
तातै उतपात व्यय ध्रुव धारा तीनौ सदा,
एक समै एक वस्तु विचै यही सत्य है ॥३७॥

न्यायमत्ति मत—सवैया इकतीसा

ऐसी वानी सुनी मन माहि न सुहानी तव,
न्यायमती बोल्यो निज पक्ष को पकरि कै।
नारी विनु होय कैसे सत.न को उपजन,
भोजन को करै कोऊ पाक विनु करि कै ॥
उद्यम कै किये विनु कैसे काय सिद्ध होत,
उद्यम प्रधान यातै कहो और हरि कै।
यातै करतार जीव कह्यो विश्वनाथ एसे,
वीरज को फोरि निज उद्यम को धरि कै ॥३८॥

---

३६ AB शुद्ध>वुद्ध, साही, A, ढाई।
३७ P गहवै>गहनो, याचि>विष।

ताको जैन उत्तर कहै—सवैया इकतीसा

जैन कहै एतो वात कही है एकातनय,
स्याद्वाद वादी ऐसी वात नही कहै है।
चेतन के वीर्य जागे भागे परभाव सव,
याते यह उद्यम व्यौहार मांहि गहै है॥
कर्म उदै उद्यम सौ करै कर्म भाव ही कुं,
आतमा को उद्यम सो गुन त्रय वहै है।
कर्म कौ सामित्त्वपनौ भेद ज्ञान भाव विनुं,
अह वुद्धि भाव वसि चेतनजी लहै है॥३९॥

शिव मति कथन—सवैया इकतीसा

शिवमति कालवादी काल पक्ष गहै रहै,
कहै सव जग वात काल मत पीन है।
काल वशि वालक सो युवा होय वृद्ध होय,
काल पाय वस्तु जो नवीन सोई छीन है॥
काल वशि रितु फिरै काल पाय फल खिरै,
जनम मरन वात काल ही मे लीन है।
यातै सुख दुख राशि शिववास भववास,
रवि शशि उदै अस्त काल कै अधीन है॥४०॥

जैन उत्तर कथन—सवैया इकतीसा

जैन कहै सुनो भइया जेती कही तुम वात,
तेती सव साची पै एकात नाहि गहनौ।
स्वभाव नियत पूर्वकृत फुनि उद्यम सौ,
पंचमो तो समवाय काल वशि कहनौ॥
पांच समवाय मिलै फलै तव शिव काज,
समवाय मिल्यै विनु काज नांहि सरनौ।

मत पक्षपात हरि स्यादवाद भाव धरि,
नय भग भेद युत ऐमी ज्ञान धरनो ॥४१॥

सर्वमत एकत्वीकरन जन मत स्थापन-सवैया इकतीसा

मीमामक कर्म मानै विवहार पक्ष गहै,
वेद पाठी ब्रह्म मानै द्रव्य नय गहतु है।
बौध छिन भग कहै परजाय नय न्याय-
मती कहै करतार उद्यम महतु है॥
शिवमती कालवादी सर्व कालाधीन मानि,
पाचो समवाय तजि टेक मे रहतु है।
एते सब अशवादी अध गजरीति गहै,
स्याद्वादी सब ए अनेकता कहतु है ॥४२॥

अथ षट् दर्शन जैन के अश रूप कथन-सवैया इकतीसा

विवहार नय गहे प्रकृति है मुख्य रूप,
निहचै सभाव ब्रह्म नित्य ज्ञान धाम है।
परजाय नै अध्रुव सुछम सभाव धर,
उद्यम सभाव वीर्य करतार राम है॥
काल चाल है प्रवाह परनाम चक्रगति,
यु अनेक अगवान जीव परिनाम है।
एक अग तजि सरवग गहै सो सुबुद्धि,
एक अग रग रागी सो कुबुद्धि धाम है ॥४३॥

अथ स्याद्वाद सरूप कथन-सवैया इकतीसा

आपनै चतुष्क गुन है सो नाहि परगुन
यातै दोनु बात सम कथन रहतु है।

---

४१ P बे>प, मिथ्या विनु । ४२ P मानि, मानो।
४३ P सुक्षम, उदिम।

है भी नांहि कह्यो जाय नाहि नांहि कह्यो जाय,
है है न न कह्यो सर्व नय मै कहतु है ॥
नित्य हे अनित्य हे कै सत हे असत है कै,
अव्यक्त वकतव्य सब अभिमतु है ।
ऐसो प्रभु चिदानद ज्ञानादि त्रिगुन योग,
'देवचद' पद पाय आनद लहतु है ॥४४॥

॥ तृतीयोधिकार. समाप्तम् ॥

॥ मुक्ति-मार्ग नाम चतुर्थाधिकार ॥

सविकल्प निर्विकल्प ज्ञान कथनम्

दोहा—नव नव गुन मय जीउ कह्यो, यह सविकल्पक ज्ञान ।
कर्म नाश कर एक मय, निर्विकल्प को ध्यान ॥४५॥

अथ निर्विकल्प ध्यान महिमा कथनम्—सवैया इकतीसा

अनादि अज्ञान लीयै राग दोष मद पीयै,
मोह महातम सो महातम वधार्यो है ।
जीव लोक जीत लीयो ज्ञान गुन मुंद दीयो,
कीयो निज राज परभाव को पसार्यो है ॥
ताको परताप तोरि कर्म दोरि कौ मरोरि,
भोरि परभाव राज ज्ञान राज धार्यो है ।
ऐसो निर्विकल्प ध्यान ताको महिमान मान,
जामै 'देवचंद' और को कहन हार्यो है ॥४६॥

---

४४. P अवक्तव्य>अव्यक्त । ४६. कहनहारो है ।

अथ निर्विकल्प ध्यान हेतु कथन्–सवैया तेवीसा

ध्यान को गेह अछेह आनन्द को, फंद के कंद को छेदन हारो ।
धीरज शक्ति अनन्त को नायक, लायक क्षायक भाव उजारो ॥
घायक मोह को घायक मोह को, खोज लियैं निज बोधि पसारो ।
ध्यान एकत्व को हेतु है आतम, या सम ताप का तारन वारो ॥४७॥

अथ तन हेय कथन

दोहा—ज्योति अनादि अनन्त धर, पर करता निज मानि ।
भया गेह अज्ञान को, स्व स्वरूप गुन भानि ॥४८॥
ज्ञान दृष्टि छूटैं भई, तन परि चेतन भ्रांति ।
पर क्रिय करता भ्रम भयो, मतवाना दृष्टांति ॥४९॥
जैसो इन्द्री भोग परि, है तेरो अनुराग ।
तैसो आतम ज्ञान सु, परिचित पद शिव माग ॥५०॥
जो रूपी सो मैं नहीं, मैं अरूप चिद् गेह ।
याते तजि परभाव सब, आतम रूप भजि एह ॥५१॥
या तन की ममता गयें, आतम तत्त्व दृढ होय ।
ताको जो अपनो गिनैं, मूढ बुद्ध है सोय ॥५२॥
तन ए पुद्गल पिंड जड, तू चेतन सम्मान ।
ऐसो अभिन्न मिलाप सब, ज्यों किसी विध आनि ॥५३॥
मांस अस्थि रुधिरादिको, करैं दुगंछा पेखि ।
तन्मय तन को निज गिन, यह अनात्मा देखि ॥५४॥

---

४७ छोरनहारो । ४८ P °धर>पर ।
५१ P चिद्रूप>चिद्गेह, अरूप>एह ।
५२ P अमवारो ।

सवैया तेवीसा

देह को नेह तजो तुम चातुर, आतुर भाव सदा इन मांहि ।
व्यंतर कै पुर सी छिन भगुर, रूप की सोभ सो वाहर छांही ॥
घणा दिन के सव सी दुर्गन्ध कै, दूपन गेह वदी इन मांही ।
या तन की ममता जु तजो तो(लों),आतम ज्ञान जगै तुम्ह नाही ॥५५॥

दोहा—देहादिक को भिन्न गिनि, गहे आतम शिव कूल ।
पर पै निज अभिमानता, यह भव भ्रमणा मूल ॥५६॥

निष्पृह भाव कथन-सवैया इकतीसा

अधरम कौ घाती शिव माग की सघाती ऐसो,
रच नाहि पक्षपाती अध्यातम राव है ।
परम नरमवर भेद ज्ञान भाव धर,
हरि पर दोप कर्म नास को उपाव है ॥
तन मन त्रिया धन यौवनादि पर गिनै,
मोह द्रोह मैन सैन जीतवे को दाव है ॥
नरक की भीति नाहि सुर पद प्रीति नाहि,
भव रीति रीत्यौ ऐसो निष्पृह भाव है ॥५७॥

दोहा—स्व स्वरूप गत दृष्टि सौ, नाहि शक्र पद चाहि ।
स्व स्वरूप गत दृष्टि को ?, लघु पद लहै उछाहि ॥५८॥
आतम अनुभव सुक्ख सौ, भ्रष्ट भए दुर्बुद्धि ।
विपयन रति चित मै करै, सूकर कादम लुद्ध ॥५९॥
परम ज्योति सुख स्वाद रत, योगी योग निरत्त ।
कुछित अन्न जु राग विनु, जानहि विपय अनित्त ॥६०॥

---

५५. पांही>माहि, AB परसी>पुरमी, B नी>सी ।
५७. मारग>माग ।
५८. P प्रति मे पद्याक, ५९-६०. ऊपर नीचे है ।

आतम स्वरूप वर्णन-सवैया तेवीसा

सुद्ध सुछद अफद अमर, अनद को कद सदा सुख धारी ।
एसो अनोपम आतम ज्ञान, सुधा घरकुण्ड मे झीनि अपारी ॥
अनादि अज्ञान के भम लग्यो यह, कम कलक की मैल पखारी ।
सत लहै निरवान को थानकि, दर्शन ज्ञान चारित्र मौं भारी ॥६१॥

दोहा—स्व स्वरूप अवलव बिनु, शिव पथ और न बीज ।
मुक्ति स्त्री वशि करन को, सोह ध्यान सुवीज ॥६२॥
जैसे पकज दल अमल, रहै कर्म सौं भिन्न ।
तो आतम स्व समाव मय, कम खेद निर्विन्न ॥६३॥

इद्री सुख हेय कथन-सवैया इकतीसा

जग इद्री सुख जेते तेते सब दुख रूप,
कबहु न समता है ममता अनत है ।
जैसे पथी मरुदेश ग्रीषम समै प्रवेश,
मध्य दिन नीर विनु भोजन करत है ॥
काम भोग रति मति उचित न तो पै राम,
पाम त्याजि जैसो दुख राज मैं महत है ।
पन्नग ज्यु दुख देय निहचै मरूप हेय,
गेय योग उपादेय माग मै अकात है ॥६४॥

दोहा—उत्तम पद तै तू परचौ, सो विभाव अनुभाव ।
तो भी वाही मैं रमै, यहा कहौं गुन राव ॥६५॥

---

६१ P सुवृद>सुछन्द, जील>झीलि, AB भ्रम>भम P मे>सौं ।

६४ P दीन>दिन, °याज>त्याजि, जसे>जसो, राजी>राज, अकत ।

सवैया तेवीसा

यह शरीर है पीर को पीहर, ई पर आतम की हर हेरी ।
वेरी करेरी परी यह ज्ञायक, काइ अनेरी रही नही मेरी ।।
ज्ञान सरूप मयी भजि चेतन, ए तन पै मन प्रीति उथेरी ।
ज्ञान को मोगर लेकर आतम,तोरि तु मोह जंजीर की जेरी ।।६६।।

शरीर पर कथन—सवैया इकतीसा

मै तो तनधारी नांहि एतो तन मेरो नांहि,
मै तो ज्ञान गुन धारी कर्म सौ न्यारो है ।
मै तो चेतना सरूप एतो जड़ भाव कूप,
मेरो याको कोन नेह एह न विचार्यो है ।।
मै तो नित्य ए अनित्य प्रगट अशुचि खान,
हानि थान ऐसो देह मोकों कैसे प्यारो है ।
मोह के विटंब घेर्यो भव काल थिति प्रेर्यो,
ऐसो भेद ज्ञान मैं तो चित्तमें न धार्यो है ।।६७।।

परहेय आतमा उपादेय कथन—सवैया इकतीसा

शुद्ध दृष्टि समकिती प्रकृति विरत चित्त,
करम को करत न कहो कह्यो जात है ।
मिथ्या दृष्टि क्रूरमती पर रंग राच्यो संतो,
परकृत फल ही को भोगता कहात है ।।
निज पर कौ विवेक करैं भेदज्ञान छेक,
टेक डारि के अनेक यहै जैन बात है ।
पर मुक्त गुन युक्त भुक्ति विनु मुक्ति युक्त,
ऐसे निज चेतन को देवचद ध्यात है ।।६८।।

---

६६. P उवेरी>उथेरी । ६७. P रूप>कूप । ६८. Pप्रकृते, P पर भुक्त गुण युक्ति भक्ति विनु मुक्ति यूत ।

मन सकल्प कथन

दोहा—विकरप जाल कल्लोल करि, चपल मनोजल फद ।
चिद्गह चेतनता दुरै, ज्यु बाहर मे चन्द ।।६६।।

आतमा मोक्ष हेतु—सवैया तेवीसा

आतम आतम भाव भयों ध्रुव, चेतनता गुन ग्यान की साई ।
ध्यायक ध्येय अभेद चिदाकर, ध्यावहु त्याग कै सौज पराई ।
चचल भाव तजो भजि एकता, चित तरग-अनग हराई ।
सादि अनत महत अमीत सो, पावहु मोक्ष प्रधान सवाई ।।७०।।

दोहा—परगुण समुख ज्ञान सौं, चेतन परवशि होय ।
निजगुण समुखता लहै, लहै आतम गुण सोय ।।७१।।

ज्ञान थिरीकरण

दोहा—चित्त प्रीति ज्यु देह पै, त्यु चेतन पै होय ।
तीहु काल भी कम को बधन लहै न सोय ।।७२।।

आतमा अबध कथन—सवैया इकतीसा

जडता सुभाव लीय मोहमद पान कीयै,
ऐसो पर द्रव्य सो ता मेरो धन नांही है ।
मैं तो याको नाथ नाहि म तो नाथ चेतना को,
ज्ञानादि अभग रग जाके सग पांहि है ।।
अतरग बहिरग अग परसग भगि,
इन्द्री की उमग तजि जामै पर छाही है ।
होय जो चेतन एसो जसो तो सभाउ तैसो,
तो ए कम बध पुज तो कु न कहा ही है ।।७३।।

---

६६ P चितग्रह । ७० P भयों > भयौं, P अमीत > अमीत ।
७३ P माही > पाहि ।

आत्मा सक्रिय कथनम्

दोहा—निक्रिय लोह क्रिया लहै, अयस्कांत मणि योग ।
त्यु निःक्रिय सक्रिय हुवै, जीव कर्म्म कै रोग ॥७४॥

परमात्म स्वरूप कथन—सवैया इकतीसा

शुद्ध बुद्ध चिदानद निरदुन्द भी मुकद,
अफद अमोद कंद अनादि अनत है ।
निर्मल परब्रह्म पूरन परम ज्योति,
परम अगम अकिरिय महा संत है ।
अविनाशी अज परमातमा सु जान जिन,
निरजन अमलान सिद्ध भगवंत है ।
ऐसो जीव कर्म संग-सग लग्यो ज्ञान भूलि,
कसतूरि मृग ज्यु भवन मे अटंत है ॥७५॥

आत्मज्ञान लाभ हेतु कथन

चौपाई—करम-करम कारिज सौं न्यारा । जे ध्यावहि चेतन की धारा ॥
लहै नित्य पद तेह अनन्त । स्याद्वाद युत सदा महत ॥७६॥
दोहा—ज्ञान दृष्टि चारित्र मय, एक शुद्ध निरदोप ।
स्व स्वरूप एकत्व भजि, करहि कर्म को सोप ॥७७॥

शिष्य प्रश्न

दोहा—एक द्रव्य मै तीन गुन, कैसे रहै एकत्र ।
यह हम मन सदेह है, कहौ गुरु परम पवित्र ॥७८॥

गुरु उत्तर कथन—सवैया इकतीसा

जैसे पीत स्निग्ध गुरु तीन गुन भेद विनु,
निरन्तर आदि लेकै कंचन मे रहे हैं ।

---

७६ P की रज सो>कारिज सौं, मंत>सदा । ७७. एकत्र>एकत्त्व ।
७५. P निरद्वन्द, भुवन ।

दहन पचन फुनि तपन ए तीन गुन,
अगनि में एक सर्म जिनवर कहै है ॥
शीतल प्रतल वलि निरमल जल विचि,
तीनौ गुन एक समं स्वभाव सौं वहै है ।
तैसे जीव द्रव्य माहि ज्ञानादि त्रिगुन रहे,
निहच सुभाव से अभेद रूप गहै है ॥७९॥

ज्ञानगुन भेदाभेद कथन

जो विचारीये नय विवहारा । तौ ज्ञानादि जीव सु न्यारा ।
राहु ससि जैसे यह लीजै । है अभेद पै भेद कहीजै ॥८०॥

भेद ज्ञान महिमा कथन—सवया इकतीसा

काम भोग लालच दे सब जीव वशि कीने,
भीने मोह रस मे निरतर विकल है ।
ताकी छाक दूर ह्वै आप पर भेद करै,
ऐसो भेद ग्यान गुन अदोष अमल है ॥
धारावाही रीति लीयै ताको धरै सो सुबुद्धि,
कर्म के मोरन को कारन सबल है ।
अचल सकल चिनु सकाल जगत परि,
रहै भिद्ध ह्वै पै जैसे तोय मे कमल है ॥८१॥

आतम बुद्धि उपादेय कथन

दोहा—आतम बुद्धि शिव को करै, देह बुद्धि ससार ।
तातै तन धी त्याग कै, करि निज गुन सौं प्यार ॥८२॥
पुण्य पाप दोनु प्रकृति, है पुद्गल को खध ।
इन पर आतम बुद्धि जो, इहै करम को बध ॥८३॥

---

८० P शीश>ससि । ८१ P लालची, हरि, परि ।

अथ शिष्य प्रश्न—सवैया इकतीसा

दुष्ट भाव पाप हेतु शुद्ध भाव पुण्य हेतु,
यातैं दोनुं कर्म माहि हेतु भेद मानियैं ।
पाप उदै है असाता पुण्य उदै होय साता,
यातैं क्षार मिष्ट रूप स्वादभेद ठानीयैं ॥
पाप तो कुगति देय पुण्य सद्गति देय,
गति भेद परतक्ष फल भेद जानीयैं ॥
पाप तो लगे अनिष्ट पुण्य सबही को इष्ट,
संकिलेस सोधिसु सुभाउ भेद आनीयैं ॥८४॥

अथ गुरु उत्तर कथन—सवैया इकतीसा

गुरु कहै पाप पुण्य दोनु कर्म जाल रूप,
हेतु रस गति फल भेद नाहि लेखीयै ।
कप रोग पाप भोग पुण्य है अकम्प रोग,
दोनुं दुख खानि विनासीक रूप देखीये ॥
पाप सौ अरुचि भाव पुण्य सेती प्रीति दाव,
मिथ्यादृष्टि जीव कुंए कुमति विशेषीये ।
दोनुं जड़ भाव रूप दोनुं को अज्ञान रूप,
इनही सौं न्यारी सोई समकिती देखीये ॥८५॥

मिथ्यामति वरनन—सवैया इकतीसा

पाप सौ विमुख अरु पुण्य ही कै सनमुख,
सुगति सुं रुख धरै कुगति सौं डरै है ।
करता मैं कारज को कीनी मै कारज ऐसो,
अहं बुद्धि मातो विपरीत रीति धरै है ॥

---

८६. P रति > रीति ।

आपको न पहिचानै ठानै भ्रम भाव मन,
तन धन निज गुन करम कौ करै है ।
कपट कौ आसन अज्ञान कौ विकासन है,
अैसौ मिथ्यामति भवसागर मे परै है ॥८६॥

पुन मिथ्यामति कथन—सवैया इकतीसा

आपकौ न जानै चित्त परही कौ मानै वित्त,
ठानै भ्रम भाव रत करम कहर मैं ।
चित्त माहि धरै वाक सुख ही की काख राखै,
डोलत निसाक राक मत्त ज्यु सहर म ॥
हानि थानि मल खानि जानै न गिलानि आनै,
राचै तामै अति विष वेद ज्यु जहर मैं ।
उललट अटत नित लोटन कबूतर ज्यु,
सुरटन नाहि कबु मिथ्या की लहर मै ॥८७॥

पुन मिथ्यादृष्टि कथन—सवैया इकतीसा

करगत जीवन[1] ज्यु जीवन घटत नित,
छिन-छिन छीन तन मन भी घटतु है ।
काल की न बात जानै कर बहुकाल तात,
तात मात भ्रात सग सान कौ वढतु है ॥
धरम मरम विनु भरम के घेर परचो,
ज्ञान विनु क्रियारत पुण्य को रटतु है ।
इतने पै भी मूरख पुरुष निज रुख नाहि,
सुख मुख भयो नित दुख मै अटतु है ॥८८॥

---

८७ P थानि । ८८ P नीत विन छीन > निनछिन छिन, बु > कौ ।
[1] जल ।

पुन मिथ्यामति कथन—सवैया तेवीसा

ग्रन्थ पढै न वढै कछु ज्ञान, अग्यान मैं लीन ज्यु पाथर[1] मैं ।
मौन रहै गहै जोग जुगति, सहे वध वन्धन हैय[2] रसैं ॥
आसन मडि आसा सव छंडि, पवन के साधक है हरसैं ।
इती करतूत करै विनु ज्ञान जे, मूढ मिथ्यातमती नरसैं ॥८६॥

मिथ्यामती दूहा

मिथ्यामति अपराधिनी, परगुन चाहै आप ।
ज्यु ज्यु पर सपति वढै, त्यु त्यु होय संताप ॥९०॥

पर वस्तु हेय आत्मा उपादेय—सवैया इकतीसा

वचन जुगति चित तन दुति मन थिति,
हित अनहित रति अरति करति है ।
अतेउर पुर वर असन वसन वन,
वस्तु गन अन जहां नयन की गति है ॥
पुण्य पाप आदि देय गेय वेय हेय सव,
सयोग वियोग थिति जामे नित्य प्रति है ।
अक्षर त्रिगुन साथ देवचद गुन नाथ,
उपादेय रूप एक आतमा अमित है ॥९१॥

पुण्य पाप हेय कथन—सवैया इकतीसा

पुण्य पाप पुदगल मल है अखिल दल,
खल[3] गुल[4] डलि मनि व्यक्ति भेद धरै है ।
याते पुण्य पाप रोध कीने निज वोध सोध,
व्याध की समाधि राग रोष (दोष) झरै है ॥

---

८९. P ग्रहे, सहि, AB साथ कहै>सावक है । ९१. P की रति है>करति है ।
१-पत्थर, २-अश्व और गदहे के समान, ३-तिलो की खली, ४- गुड़ ।

इधन अभाव जैसे अगनि उद्योत नाहि,
बीज के अभाव जैसे वृक्ष वृद्धि टरै है।
तसे भाव कम नास ज्ञान चेतना प्रकाश,
परम अनन्त पद देवचन्द वरै है ॥६२॥

आतम शिक्षा कथन—सवैया तेवीसा

करम उपाधि अनादि के बन्धन, जीत लगी तुमची[४] परसों।
रागरु रोष को रग लगौ जीउ, नील को रग जु कापरसों[६]॥
पारकी सपति आपनी थापि कैं, थापन दावन को तरसौं।
भये तुम ब्रह्म करम्म के कारक, मूरख रास[७] लगे परसौ ॥६३॥

बन्धविधि कथन

दोहा—बधै अपनी लाल सौ, कुलोया[१]वर तियंच।
त्यु अशुद्ध निजभाव सौं, बँधै आतमा खचि ॥६४॥

मिथ्यामति कथन गुरु उत्तर सहित—सवैया इकतीसा

ईश्वर किरत[१] इस आतमा कहत नित्य,
ज्ञान रित[३] मत रत मद मतवारै है।
ईश्वर की इच्छा करि नर फिरै वहु परै,
नरग सरग तिरजग योनि धारै है॥
एते परि जैन कहै आतमा अकृत सत
अरूपी दिगादिवत् अलिपत सार है।
कुगति सुगति यात आनि कोऊ नाहि देत
निज कृत कमफल भोगतै विचार है ॥६५॥

५– तुम्हारी, ६– कपडे से, ७– सार।

६४ P वीर पच>तियच। ६५ P नित। अक्रिय>अकृत।

१– रेशम का कीडा या मक्खी, २– कृत, ३– रिक्त खाली।

लोकालोक तीनकाल उतपात ध्रुव नाश,
जाकी ज्ञान ज्योति मांहि जगत समायो है।
ऐसो परमातम आतम महातम धारी,
परम आनन्द कन्द देवचन्द पायो है ॥१०२॥

दोहा—पूर्व कृत निजकर्मफल, ग्रहै भोगवै जीउ।
तो भी ज्ञान वैराग वल, वंधन विना सदीउ ॥१०३॥

शिष्य प्रश्न–सवैया इकतीसा

काम भोग भोगते भी अवन्धक कह्यो ज्ञाता,
एतो वात हम मन माहि न सुहानी है।
श्रावक मुनीश एतै क्रिया करै सव जेतो,
तेती फल विनु विनुकाज की कहानी है॥
दान दया तप जप दम उपशम भाव,
तजेगे कठिन वात जेते जग प्रानी है।
रहेंगे प्रमाद रत निरवन्ध अन्ध जैसे,
ज्ञान मत वन्ध के अवन्ध मति ठानी है ॥१०४॥

गुरु उत्तर वचन—सवया इकतीसा

जैसे विप वेद नर विप को विकार जानै,
करै ताको उपचार विप अपहरै है।
सोई आप विप भखे तो भी कुछ नांहि लखे,
मूरछा न पावै सो तो लोक विप हरै है॥
जैसे नाग मत्रधर नागसों गहावै अग,
आप अडकित रहै नाग ही सो लरै है।
तैसे ज्ञाता पूर्वकर्म जोग भोग भोगवै पै,
रहै अलिप्त तातै वन्ध नही वरै है ॥१०५॥

---

१०२. P कि>कै। १०३. P जीव सदीव।
१०५. P नि नंग>अनिग्त, अनिप्त>अलिमता।

पुन गुर वचनम्—सवया इकतीसा

जैसे कही दावानल जलै अति ही चपल,
जालै पुरवन जामै गिरी कूट जलै है ।
तब कोऊ मन्त्रवादी मन्त्र री सकति सेती,
आगि शक्ति बन्ध राखे तब ताप टलै है ॥
सो तो मन्त्रधर वर तामैं कूद कूद परैं,
फिरैं घिरैं इत उत तो भी नाहि चलै है ।
तसे ज्ञाता बोध शक्ति बन्ध शक्ति रोधकीनी,
भोगवे पैं भोग तोभी कर्म मे न मिलै है ॥१०६॥

शिष्य प्रश्न—सवया इकतीसा

शिष्य कहै स्वामी तुम्ह कही एती बात साचो,
तो भी हम मन माहि संदेह तो रहै है ।
मूढ जैसे भोग रीत समकिती भोगवै हैं,
तो भी तुम बैन मे अबन्ध रीत कहै है ॥
जैसे कोऊ सन्त नर मद्य प आरति, नाहि,
रति माही वाहि कहै मद नाहि गहै है ।
तैसे ज्ञाता द्रव्य भोग भोगवैं पैं राग बिनु,
अभिलाष रस रा तो बन्ध नाहि लहै है ॥१०७॥

जिन मत कथन

दोहा—सर्व भाव निज रूप गत, यह जिनवर की बानि ।
तातैं कर्त्ता कर्म को, वृथा निसेम बखानि ॥१०८॥

---

१०६ P जाल>जार, अगि, मिहैं>मिल ।
१०७ P बैन मे>बन म ।

आतम गुण वर्णन—सवैया इकतीसा

करतार भोगतार ऐसे जे विकार भार,
अपहार करि वर थिर भावलह्यो है।
गुन घनघाती च्यार ताको वंध तोरि डार,
अमन्द आनन्द कन्द मोद वृन्द वर्यो है।
शुद्ध सांत है अनन्त अहत विचित्र वृत्ति,
परं ज्योति सत्य नित्य सत्य रुप रह्यो है।
सव ज्ञेय मेया मये ज्ञेय करि हेय हरि,
शुद्ध वुद्ध ब्रह्म मेरो सदा काल कह्यो है ॥११६॥

आतम सरूप—सवैया तेवीसा

मुक्ति को माग सुवाग विराग को, दर्शन ज्ञान चरित्र त्रयी है।
तन्मय आतम आतम वेदिकै, मोह उच्छेदन रीति लयी है॥
आतम ज्ञान कला कलिवै जमु, निर्मल संवर वुद्धि भयी है।
सो नर जो कछु कर्म करै सो तो, पूरव कर्म उदीक भयी है ॥११७॥

पुनः सवैया इकतीसा

करता हु भोगता हुं निरन्तर कारज को,
ऐसो अगन्यान जेतो काल मोकुं रह्यो है।
तेतो काल शुद्ध अनुभव न लहनु विनु,
अज्ञानी जन मन भमन कुं गह्यो है॥
अव सर्वज्ञ जिन वचन अमृत पीत,
अति रसवत सत सन्त रस लह्यो है।
चिरकाल पान करि सुथित सुधृति वर,
अजर अमर परब्रह्म पद लह्यो है ॥११८॥

---

११८. P मोको, लहनु, पीन>पीत, सुधि तसु ध्रुति वरि।

पुन सवैया—तेयीसा

आतम रूप के जानपनैं बिनु, चेतन यौ करतार गहीजै।
ताही के जानपनै जिन ज्ञान मे, या प अगारक भाय लहीजै॥
याही तैं रागरु दोष उदै ह्वन, मो विरत नाहि चित यु धरीजै।
भिन्न गह्यो निज नैम जु मानत, सो नहि आ भव माहि नचीजै॥११६॥

पुन आतमस्वरूप—सवया इकतीसा

जा लगि अविद्या जन्म हट तम अन्धतम ताहि मैं,
निमित्त भयो निज ज्योति हरि तैं।
ता लगि विभाव रूप राग द्वेष नेम परि,
आतमीक बुद्धि भई एर भाय धरि तैं॥
अर चिरकाल गिर नष्टो के उपर जोगे,
भेद ज्ञान गुरु लह्यो निरन्तर धरि मैं।
सब पर रीति हर आप पूर्ण ब्रह्म भेनी,
चिन्मुनि विभूनि ध्रुव भयो गुरु नरि म॥१२०॥

आतमाहचार कथनम्—अडिल्ल

मैं अपार म गुम गह्यो पर ध्यान म।
आप्या जान्यो तत्त्व तोहि गुन मार म॥
ज्यु रवि महीं रूप अपूनि नित्त म पर।
तासैं ज्ञान भार पाय भान गुरु जन पर॥१२१॥

आतम महिमा कथन—सवया इकतीसा

गहुर अतीत जाब विनार है अनहद,
पर अगृष्ट स्पष्ट निरन्तर स्पष्ट है।
प्रकटित आतम गुन विभूति अनन्त कोश,
पर की विभूति न ही प्रीति जाकी नष्ट है॥

---

११६ P बच>नहि। १२० P निमित्त। १२१ P पार।

जाही को सवाद स्याद्वाद को प्रमोद होत,
अगणित महा भोग संपदा प्रविष्ट है।
बुद्धि के निधान निरवान थान पामिवै को,
सावधान होत नित ऐसो ब्रह्म इष्ट है ॥१२२॥

पुनः आत्म महिमा—सवैया इकतीसा

महाव्रत तप ताप यम नियमादि जाप,
प्राणायाम योग कै अभ्यासी जे प्रवल है।
क्षुधा तृषा शीत क्षिति सोवनादि परीषह,
अनुलोम प्रतिलोम माहि नांहि चल है॥
इत्यादिक क्रिया गुन जाके जान पनै विनु,
नाथहीन सेना जैसे अति निरवल है।
जाके जाने देख्ये सव जान्यौ देख्यो जग द्रव्य,
अैसो परब्रह्म मेरो ध्यान सु सफल है ॥१२३॥

चिदानन्द उपादेय कथन—सवैया इकतीसा

सतत अनन्त तेज पुञ्ज सो विराजमान,
दलित अज्ञान मल अचल अमल है।
सोई तत्त्व गह्रो भैया रहै भव कीच वीच,
तो भी यातै भिन्न जैसे पंक में कमल है॥
इंद्र चंद्र चक्रवर्त्ति पद सुख को सवाद,
जाके सुधा स्वाद आगै मानु क्षार जल है।
ऐसो परमातमा मैं सोहुँ सोह ध्यान गम,
अगम परम ब्रह्म धाम में सकल है। १२४॥

---

१२४. P एसो, परब्रह्म ।

अशुद्ध जीव कथन बहिरात्मा की निन्दा—सवैया तेवीसा

ग्रन्थ भने सब सासन के, अभिमान धरै विचरै जग जेते ।
आपको पण्डित मुख्य कहाय, करै नित्य वाद विवाद अचेते ॥
आतम बुद्धि तजै न सरीर सों, क्या पढिके गुनिके समझंते ।
पाठ पढ्यौ गुन कारन ना कछु राम हि राम जपत ज्यु तोते ॥१२५॥

जैन धर्म प्राप्ति कथन—सवैया तेवीसा

मैं बहु काल अज्ञान की चाल मे, आपने रूप के भाव भुलानो ।
सो निज रूप लह्यो सुलह्यो अब, मैं सब मैं भवसी सुलझानो ॥
चेतनवंत सदा अति उज्जल, सत अनन्त सुज्ञान मिलानो ।
ज्ञान को बीज अखेज निरजन, सज्जन श्रीजिन धम पिछानो ॥१२६॥

आत्म पाठ स्तुति कथन—सवैया तेवीसा

आतम सु मथि आतमज्ञान को, भानु उद्योत ज्यु ज्योति जढै है ।
वास को काठ घसत ज्यु आपमें, आपमु ज्यु दव दाव कढै है ॥
याहि तें आतम मगन मती, विरली सुव्रति शिव भाग चढै है ।
आतम ज्ञान विना मरनो नहि, साधक आतम पाठ पढै है ॥१२७॥

चौपाई—जैसे रजु सरप भ्रम माने, त्यु अजान मिथ्यामति ठानै ।
देह बुद्धि को आत्म विचारे याते भम भम हेतु पसारे ॥१२८॥'

अज्ञान विलास कथन—सवैया तेवीसा

मैं बहु वेर अज्ञान के फेर मैं और की औरति हेर न धायो ।
बँध्यो भव लोह विमोह की नीद मैं, ज्ञायक दृष्टि को तेज दवायो।
आतम बुद्धि भई पर पैं, हरपैं अरपैं निज मीत कहायो
'चद' कहै गुन चद लहै बिनु काल अनन्त गमन्त गमायो ॥१२९॥

१२६ P सुनानी, अखीज । १२७ P ना>नहि ।

ज्ञान जागृत दशा—सवैया इकतीसा

याहि कै पिछान्यौ अति अतिसै चेतन सत्ति,
जाग्यै जामै तीन लोक अलोक समाने है ।
याही कै सरूप जान्यै जानै पट भाव सव,
एतो पट भाव कै पिछलगू कहानै है ॥
अतिही निसत्त मति शास्त्र कै विचित्रताई,
जाकै जानपनै विनु श्रम रूप ठाने है ।
जैसे कन विनु तुस खडन है निकारन,
तैसे ज्ञान विनु सव काज निफलाने हे ॥१३०॥
जाके अनुभव सेती भागी भव भय भीति,
निज परतीत सो अनन्त नीत जागे है ।
जैसे भान के उद्योत सव जग ज्योति होत,
भासै घट पट भाव अन्धकार भागे है ॥
तैसे जाकै तेज आगै राग द्वेप ग्रन्थि भागै,
लागै न करम नव शिव जाके आगे है ।
परम आनन्द कन्द देवचन्द सुखकर,
धरमी व्रती मुनीश जाकै ध्यान लागे है ॥१३१॥

दोहा—आतम आतम ध्यान गत, न भजे और उपाय ।
जैसे पावक काठ विनु, सहिजै उपशम थाय ॥१३२॥

पुनः आत्मा गुन कथन

छप्पय—परम सुखी श्री थान, नाहि को दूजो यातै ।
निरभय पद ए मुख्य, और सव जन की वातै ॥
यहै सत रस जान, मोख्य मारग भी एही ।
कर्म वृक्ष के छेद, यहै फरसीज अवैही ॥

---

१३०. P एते, पिछानकु । १३१. P भागे, अनित नित नित जागी है ।

इह ज्ञानवान भगवान वर,ज्ञानादिक गुन नय वहै ।
यह भजो रमो जानो इहै, सवमाहि दुगम इहै ॥१३३॥

अथ चेतन गुन कथन—सवैया तेवीसा

ज्ञानि ! अज्ञान के हेतु भए तुम, आपही तै भमते भव माही ।
कारक बुद्धि भई परसो, तरसौ चित मैं सुख सपति पाही ॥
आपकौ जानि के ध्यान मैं आनिकै, शुद्ध मुनी निरवान को जाही ।
आपको नायक आप ही चेतन, चेतनता गुन ज्ञान कौ चाहौ ॥१३४॥
भोग सजोग ज्यु भोग के गेह ते, नेह तैं या भव तैं विरचै जे ।
भावहि आतम आतम ते वर, आतम ज्ञान कला अरचै जे ॥
मोह की जेल को ठेल कै ते नर, या भव कै सुख ना परचै जे ।
सम्यक् ध्यान हियै निज आनि कै,कम को भरम सही खरचै ते ॥१३५॥
राग विना जन तिक्त कसाय ज्यु, औषध सु चित प्रीति उतारै ।
आतुरता विनु आतुर ते नर देह की सार कर दिन सारै ॥
दर्शन मोह विना चिमूरति, चेतन चेतन सुप सभारै ।
भोग सजाग को जोग करै नहीं, साधु सदा चित ज्ञान को धारै ॥१३६॥

पुन चेतन गुन कथन—सवैया तेवीसा

अतर तत्त्व विलोकि कीया जिम, भानु उदै सव वस्तु प्रकासै ।
रहै जग म जग रीति धरै नही, आप गुनै करी उज्जल भासै ॥
माह की नीद मैं घूमित चेतन, देखत स्वप्न भवादि उलासै ।
आप मैं आप ममाय रहे ध्रुव, शुद्ध निरजन भाव अभ्यासै ॥१३७॥

ज्ञान विलास कथन—सवैया तेवीसा

ज्ञान विलास अभ्यास किया विनु, कम को भ्रम नदीउ वधारै ।
इद्रिय पच प्रपच कर चित, या रस प्यार अपार सभारै ॥

---

१३४ P आपत ही ।
१—जाना ।

चिनमैं चेतन खान दरशन भासमान,
अनुभव ज्ञान जान आन गुन हीन है ।
अक्षर त्रिगुण इंद देवचंद महानंद,
परम अमृत सन्त पद लयलीन हैं ॥१४७॥

दोहा-कुण्डलियाँ

थैसो चेतन ब्रह्म वर समता नारि वियोग ।
चित थिरता न लहै कहुँ, पावहिं बहु विधि सोग ॥
पावहि बहु विधि सोग, जनम मरनादि खेद अति ।
भव भव भ्रमण भमत जहर जाहर जु विरह चित्त ॥
छिन भगुर गुनहीन गह्यो आतम कर ए तन ।
निज प्रिय विनु बहु भर्म ब्रह्म वर ऐसो चेतन ॥१४८॥

आतम समता वियोग—सवैया तेवीसा

मीत विहीन मैं दीन भयो अति, मो चित सो थिरता न लहै है ।
यहै जग मैं दिन राति निरतर, अन्तर तैं थिरता न गहै है ॥
आतम मीत कैं सुख वियोग सु, दुख पर्यो सुख कुंज चहै है ।
सो सुख तो निज ज्ञान के आगम, जो कवहुँ पर कुं न वहै है ॥१४९॥

पुन. आतमा के विशुद्ध गुन कथन—सवैया तेवीसा

आथिरता थिरता समता लहि और के ठौर तो नाहि रुलैंगे ।
चित्त प्रवृत्ति को अति निवृत्ति मैं, या गुन गान में ठीक घुलैंगे ॥
जां लगि चेतनता मुझ मैं थिर, त्यां लगि या गुन त्रय न भूलैंगे ।
'देव' कहै निज देव की सेव सी, या भव टेव कों दूर ठिलेंगे ॥१५०॥

---

१४८. P जह रज्जु > जहर जाहरनु क्षण > छिन, करण > कर ए ।
१४९ P मित्त, ज्ञान > गान ।

चेतन समता प्रीति कथन

दोहा—चेतन चेतनता सहित, परम धरम गुन थान ।
पावे वर निरवान पद, समता प्रीति निधान ॥१५१॥

अथ कवि निज लघुता कथन—सवैया तेवीसा

मैं जिन आगम तै जु उल्लधि कै, जो कछु वात विरुद्ध बखानी ।
सो तुम सोधि कै भाखहु पडित, जाही की वुद्धि सुवुद्धि निसानी ॥
गहो गुन भी सुनि के तुम सज्जन, शास्त्र को अथ सुतत्त्व पिछानी ।
बोजि सुवोधक ग्रन्थ गहै वुध, डारि के सपति एह विरानी ॥१५२॥

अथ पूर्व्व कवीसर के गुन वर्णन—सवैया इकतीसा

पाठक सु पाठही के निवारन आठही के,
हस राज राज पति नामे हस राज है ॥
ताके कौन है कलश (श) त अडवीस जुत,
ज्ञान ही के जान अर दसन के राज है ॥
तत्त्व के पिछान जान ताही कौ निधान मान,
विमल अमल सव ग्रन्थ सिरताज है ।
आपा पर भेद कर पर ब्रह्म भाव भर,
शुद्ध सरधान धर नरताकै काज है ॥१५३॥

दोहा—हिन्दू धम वीकानयर, कीनी सुख चोमास ।
तहा एह निज ज्ञान मे, कीयो ग्रन्थ अभ्यास ॥१५४॥

अथ कवीसर के गुरु के नाम कथन—सवैया इकतीसा

वर्त्तमान काल थित आगम सकल वित्त,
जग मे प्रधान ज्ञानवान सव कहै है ।
जिनवर धमपरि जार्न। परनीन थिर,
और मत बात चित्त माहि नहिं गहै है ॥

१५२ P खडित जाही की मोह निशानी, गहो > गहै ।
१५३ P सलस > कलश । १५४ P तिहा ।

जिनदत्त सूरि वर कही जो क्रिया प्रवर,
खरतर खरतर शुद्धरीति वहै है ।
पुण्य के प्रधान ध्यान सागर सुमति होके,
साधुरंग साधुरंग राजसार लहै है ॥१५५॥

दोहा—सब पाठक सिर सेहरो, राजसार गुणवान ।
विचरै आरज देश मे, भविजन छत्र समान ॥१५६॥

सवैया इकतीसा

ताके शीस है विनीत परभीत सौ वितीत,
साधु रीति नीति धारी गुन अभिराम है ।
आतम ज्ञान धर्म धर वाचक सिद्धान्तवर,
अति उपसंत चित्त ज्ञानधर्म नाम है ॥
ताके शिष्य राजहंस राजहंस मानसर,
सुप्रधान उद्यमादि गुन गन धाम है ॥
अंतेवासी देवचन्द कीनो ए गरंथ वर,
अपनो चेतनराम खेलिवै कुं ठाम है ॥१५७॥

दोहा—कीनो इहाँ सहाय अति, दुर्गदास शुभ चित्त ।
समझावन निजमित्त कौ, कीनों ग्रंथ पवित्त ॥१५८॥

अथ शास्त्र के श्रोता तिनके नाम

आतम सभाव मिठुमल्ल कोपहारी दीठौ,
भैरुदास भेउदास मूलचन्द जान है ।
ज्ञान-लेखराज वर पारस स्वभावधर,
सोम जीव तत्त्व परि जाको सरधान है ॥

---

१५७. सिवंतवर । १५८. P यहां ।

ज्ञानादि त्रिगुनमत अध्यातम ध्यान मत,
मूनतान थानवासी श्रावक सुजान है ।
ताकी धम प्रीति मन आनि के गरथ कीनौ,
गुन परजाय धर जामैं द्रव्य ज्ञान है ॥१५६॥

दूहा—अध्यातम शैली सरस, जे मानत सो जैन ।
ते वाचेंगे ग्रन्थ यह, ज्ञानामृत रस लैन ॥ १६० ॥
गुन लच्छन पहिचानि कैं, हेय वस्तु करि हेय ।
चिदानन्द चिन्मय अगम, शुद्ध ब्रह्म आदेय ॥१६१॥
परमातम नय शुद्ध धरि, शिव मारग एहीज ।
यहै मोहमैं नवि भर्म, यही ग्रन्थ को बीज ॥१६२॥

संवत वर्णन

दोहा—विक्रम संवत मान यह, भय[०] लेश्या[६] के भेद ।
शुद्ध सयम[१७] अनुमोदिनैं (१७६७) करि आश्रवको छेद॥१६३॥
ता दिन या पोथी रची, बध्यो अधिक संतोष ।
शुभ वासर पूरन भई, प्रथम जिनेसर मोष ॥१६४॥

अथ ग्रन्थ महिमा—सवैया इकतीसा

गुण को निधान है कि मानो निरवन है कि,
साचौ जिन वान यामैं अधिक उदार है ।
मानी मद भजन है मिथ्यामति भजन है,
ज्ञान दृष्टि अजन शिलाका गुणकार है ॥
राम को रमन है कि दुष्ट को दमन है कि,
परका वमन है अपार पारावार है ।
सन को सवाद है कि शुद्ध स्याद्वाद याम,
और का विषाद नाहि मानो उरहार है ॥१६५॥

---

१६१ P चिन्मय ।

दूहा—स्यादवाद युत द्रव्य पद, जहां बखानी ठीक ।
नामे 'द्रव्य प्रकाश' यो, ज्ञान ग्रंथ तहकीक ॥१६६॥

पुनः ग्रन्थ महिमा—सवैया इकतीसा

परनु प्रतीत नांहि पुण्य पाप भीति नांहि,
राग दोष रीति नाहि आतम विलास है ।
साधक की सिद्धि है कि बूझवै कु बुद्धि है कि,
रीझवै कु रिद्धि ज्ञान भान को विकास है ॥
सज्जन सुहाग दूज चंद ज्यु चढाव है कि,
उपशम भाव यामै अधिक उल्लास है ।
अन्य मत सौं अफंद वंदत है देवचंद,
ऐसे जैन आगम मै द्रव्य को प्रकाश है ॥१६७॥

दोहा—ज्ञान ध्यान सुख थान यह, यहै मुगति को पथ ।
जीवद्वार पूरन भयै, पूरन भयो गरंथ ॥१६८॥

इति श्री देवचंद्र मुनि विरचिते द्रव्य प्रकाश (व्रज) भाषा ग्रन्थे
तृतीयं जीवद्वारं समाप्तम्



A प्रति पत्र १६ अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर प्रति नं० ८००६

B प्रति पत्र ५० महिमाभक्ति भंडार, बड़ा उपाश्रय बीकानेर व० न० ५८.
ग्र० १०५२

P प्रति प्रकाशित श्रीमद्देवचन्द्र भाग २ वी.स. २४४५ वि.सं. १९७५ पादरा

श्री द्रव्यप्रकाश सार

प्रस्तावना-प्रारम्भिक वक्तव्य

(विदुषी आर्यारत्न श्री सज्जन श्रीजीमहाराज)

विश्व के समस्त दर्शन इन तीन आधारभूत प्रश्नों पर ही अवलम्बित हो निर्मित हुए हैं वे तीन प्रश्न हैं—(१) जगत् क्या है ? (२) आत्मा क्या है ? (३) परमात्मा क्या है ? प्रत्येक दार्शनिक ग्रन्थ में विशेषतया इन्हीं तीन को विशेष रूप से व्याख्या की गयी है इन्हीं का उत्तर देने का प्रयास किया है और जिज्ञासु की शंकाओं का समाधान भी यथाशक्ति किया गया है।

भारतीय दर्शनों में 'चार्वाक दर्शन' के अतिरिक्त सभी दर्शन अध्यात्मवादी है। उनका मुख्य लक्ष्य परमात्म स्वरूप बनना या ब्रह्मलीन हो जाना है। आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझ लेने और उसे प्रकट करने के लिए ही जगत् का स्वरूप भी समझना अनिवार्य है। जैन दर्शन जगत् को षड्द्रव्यमय मानता है। छह द्रव्य इस विश्व में सदा शाश्वत विद्यमान रहते हैं। इनमें से एक का भी कभी सर्वथा अभाव नहीं होता।

भारतीय दर्शन पुराकाल से 'द्रव्य' को मान्यता देते रहे हैं। कतिपय दर्शन द्रव्य को 'पदार्थ या तत्त्व' भी कहते हैं, बुद्ध उसे 'सत्' भी मानते हैं। सारांश कि विभिन्न दार्शनिक एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न नाम से अभिहित करते आ रहे हैं।

भारत की प्राचीन भाषाओं प्राकृत व संस्कृत में इस विषय पर रचित सैंकडों ग्रन्थ अब भी प्राप्य हैं और उनका अनुशीलन तत्तद् भाषाविज्ञ करते हैं। उपर्युक्त दोनों भाषाओं में गुम्फित ग्रन्थों के अनुवाद, विश्व की कई भाषाओं में हो चुके हैं। जैन दार्शनिक ग्रन्थ भी उनमें सम्मिलित है।

जैन दर्शन मान्य षड्द्रव्य निम्न है—

(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) काल, (५) पुद्गलास्तिकाय, (६) जीवास्तिकाय।

जैन आगमो व प्रकीर्णग्रन्थो मे उन्ही पर विषद विचार समुपलब्ध है। मुख्य द्रव्य जीवास्तिकाय है—आत्मा है, उसी को समझने के लिए अन्य द्रव्यो को विशेषतया-पुद्गलास्तिकाय को समझने की आवश्यकता है, क्योकि आत्मा की अनन्तशक्ति पुद्गल के द्वारा आवरित है। इस आवरण का सर्वथा हट जाना ही 'मुक्ति' है।

वैसे सभी दर्शनो का लक्ष्यमुक्ति है, पर जैनदर्शन की मुक्ति की अपनी विशिष्टता है। प्रत्येक धार्मिक क्रिया का केन्द्रीय-लक्ष्य 'मुक्ति' है।

अन्य द्रव्यो के साथ आत्म द्रव्य का सम्बन्ध कैसा है? शाश्वत है या अशाश्वत। सापेक्ष है या निरपेक्ष। हेय है या उपादेय। क्या हानिलाभ है? सम्बन्ध क्यो है? कैसे छोड़ा जाय? किन द्रव्यो से छूटना है? किन मे रहता है? इत्यादि विचारणाएँ दार्शनिक ग्रन्थो मे की गयी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'द्रव्यप्रकाश' भी जैन दार्शनिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। द्रव्याणुनुयोग के महान् ज्ञाता १८ वी सदी के विज्ञ सन्त प्रवर श्रीमद् देवचन्द्र गणिवर्य महोदय ने शास्त्रो का रहस्य मन्दबुद्धिजनहितार्थ तत्कालीन जनभाषा मे भी प्रकट किया है। वैसे उन्होने संस्कृत व प्राकृत मे भी अनेक ग्रन्थो की रचना की है। परन्तु वे तदभाषा विज्ञजन ही हृदयङ्गम कर सकते हैं। समभावी सन्त-पुरुषो की दृष्टि सर्वत्र सम होती है, सामान्यजन की कल्याण भावना ने साधारण बोलचाल की भाषा—राजस्थानी, गुजराती और तत् सामयिक कविजनादृत व्रजभाषा मे भी उन्होने गद्य व पद्य साहित्य का सृजन किया। उन्ही मे से एक यह लघु रचना व्रजभाषा मे गुम्फित है। इसमे दोहा, कवित्त, सवैया आदि छन्दो मे द्रव्य स्वरूप का सुन्दर, सरस एवं सरल वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ का सार

मगलाचरण मे प्रथम सिद्ध परमात्मा को नमस्कार करने के साथ ही स्याद्‌वाद भाव को भी नमन किया है, वस्तु का यथार्थ ज्ञान स्याद्‌वाद से ही होता है। स्याद्‌वाद द्वारा स्वपर का भेदज्ञान कर स्व आत्मा को मुक्त किया जा सकता है। तदनन्तर अध्यात्म की महत्ता,मोह का विलास—जिससे आत्मा भोगों मे आसक्त रह कर स्वयं को भूला हुआ रहता है। फिर षड्‌द्रव्य—१ धर्म, २ अधर्म ३ आकाश, ४ काल ५ पुद्‌गल और ६ जीव का नाम मात्र वर्णन कर स्वय की लघुता प्रकट करते हुए कहा है—

'भूधर वामनरूपो मरति बिनु वहै ऐसो लम्बी करि भुजा मैं तो मेरु चूला फरसो, तैसे मैं अलपबुद्धि महा वृद्ध ग्रन्थ मण्ड्यो,पण्डित हँसेंगे निज ज्ञान के गहर मा।।

एक पूर्वक ज्ञान हीन पर भी गर्व का अशमात्र नहीं। इस नम्रता ने ही उन्हें इस काल मे गवमा व और भवान्तर म तीर्थकर या सवक बनाया है।

'द्रव्य प्रकाश ग्रन्थ के पठनाधिकारी सम्यग्दर्शनवान् व्यक्ति ही स्वीकार किये हैं। फिर देशविरति श्रावक कौन होते हैं? इसे बतलाया है। पुन वे आरम्भ म सिद्ध स्तुति कर चुके हैं, अत शेष पदों—अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय एव साधु की स्तवना की है। 'द्रव्यस्तवना से पुण्य बन्ध और भावस्तव से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है' इसे स्पष्ट करते हुए श्रीमद् कहते हैं—

"द्रव्यस्तवना साध की, करतां पुण्य प्रकास।
आतम के गुन गावतां, केवलज्ञान विलास।।"

प्रत्येक स्तवना में स्तवनीय का स्वरूप समझाया है। आगे अविरति आदि बन्ध हेतु बतलाते हुए जो स्थानक तथा चारित्र जहां जिस गुणस्थान में पूर्ण होता है वहीं सिद्ध मुक्त होते हैं यह कर मिथ्यादृष्टि—स्वपर का

अभाव, पुद्गलरमणता एकान्त पक्ष का ग्रहण, पुण्याकांक्षा, कुगतिगमन का भय, सद्गति की अभिलाषा आदि को हेय बताया है। प्रस्तुत द्रव्य प्रकाश में तीन अधिकार हैं जिनमें से प्रथम में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एवं कालइनचार द्रव्यों का वर्णन है। दूसरे अधिकार में पुद्गलास्तिकाय एव तीसरे में जीवास्तिकाय का वर्णन है।

प्रथम अधिकार

फिर ग्रन्थारम्भ करते हुए ग्रन्थपरिचय देते हैं कि जिसमें छहों द्रव्यों का स्याद्वाद पूर्ण वर्णन है ऐसा 'द्रव्य प्रकाश' ग्रन्थ सम्यक्त्व धारण करने के लिए है। यहाँ शिष्य शंका करता है कि अन्य धर्मास्तिकायादि पाँच द्रव्य जानने की क्या आवश्यकता है? जो ज्ञान रूप और आदेय है, उस चेतन द्रव्य-आत्मा को जान लेना ही काफी है। उसके उत्तर में कहते हैं कि—यद्यपि चेतन द्रव्य अनन्त गुण वाला है, वही ध्येय तथा आदेय-ग्रहण योग्य है, किन्तु वह स्वयं को भुला कर भव-कीच में फँसा हुआ है, स्वयं का भान होने पर मुक्त रूप से विचरने लगता है। चेतन की भूल का कारण पर-जडपुद्गल की संगति है। इसी कारण चञ्चल 'बन कर भ्रमण करता' है, पर को जानने पर उसका त्याग किया जा सकता है। अत. दोनों को ही पण्डित जन बतलाते हैं। भेदज्ञान इसी से होता है और वही मुक्ति का पथ है। इसी में ज्ञान व ज्ञेय है, भेदज्ञान बिना ध्यान व ध्येय की शुद्धता नहीं होती।

निश्चय और व्यवहार, दोनों नयों से भेदज्ञान करना चाहिए, शुद्धनय निश्चय यथार्थ सत्यस्वरूप का बोधक है, व्यवहार क्रिया उससे विपरीत और भेदज्ञान में कारणरूप न होने पर ज्ञान दृष्टि से त्यागने योग्य हैं, वस्तु को पहचान कर निजस्वरूप को शुद्ध करने का निश्चय कर लेना यह शुद्धनय का स्वरूप है; यही हमारा सम्यक् मित्र है; इसके जैसा और कोई मित्र नहीं। ऐसे रत्नत्रय के स्वामी और अन्तर्यामी देव अन्य कौन हो सकते हैं? अर्थात् शुद्ध स्वरूप को प्राप्त सिद्ध भगवान् ही हैं, ऐसे शुद्धनय से ही हमारी स्थिर प्रीति है।

जिसका आधार मात्र तत्वहीन क्रिया हो वह बाह्यलिङ्ग व्यवहार नय है। इसमे भी शुद्ध व्यवहार तत्वज्ञान युक्त क्रिया ग्रहण योग्य और अशुद्ध व्यवहार त्यागने योग्य है।

निश्चय शुद्ध नय की अपेक्षा यह आत्मा नि मय निष्कलङ्क चन्द्रवत् है। अनादि अनन्त है और मात्र द्योतक है।

यहाँ शिष्य का सन्देह होता है, वह पूछता है—आपने व्यवहार नय को ज्ञानहीन पर और हेय बतलाया, फिर जैन शासन मे इसका वर्णन व व्यवहार क्यों है ?

उत्तर—मैंने आत्म तत्त्व का जानने के लिए व्यवहार व निश्चय दोना नयो का ग्रहण किया है। श्रीतीर्थकर भगवान् न तीर्थ प्रवृत्ति निमित्त दोना नय बतलाये हैं।

निश्चय लक्ष्य है, प्रवृत्ति व्यवहार मय होती है। शुद्ध व्यवहार द्वारा अशुद्ध आत्मा शुद्ध बनता है। भेदज्ञान पूर्वक प्रवृत्ति शुद्ध व्यवहार है। भेद-ज्ञान ही मुक्त होने म सहायक बनता है, भेदज्ञान के अभाव मे मुक्त नही हो सकता। अत भेद ज्ञान की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं—जसे कोई भव्यात्मा सदव ज्ञान म लीन रहता हो, वह कर्मों के बन्ध को एक क्षणमात्र म उखाड फेंकता है, उसम भेदज्ञान ही मुख्य कारण है। वह चतुर और विवेकशील है, स्वपर का ज्ञाता है। बन्ध के चक्र म फँसा हुआ तो आठा प्रहर मात्र कर्मबन्ध ही करता है और जाल मे फँसकर ससार म भ्रमण करता रहता है। स्वपर भेद ज्ञानवाला ज्ञान स पुष्ट आत्मा कर्मसमूह को अपने क्षेत्र आत्मप्रदेश म नही आने देता, अपने गुणों में निवास करते हुए गुण ज्ञान दर्शनादि की रूप राशि का भास होता रहता है और वह स्वय को आत्मप्रदेश रूप अखण्ड समझता है। भेदज्ञान रहित आत्मा अनादि काल से मेघमालाओ से आच्छादित सूर्य के सदृश होता है। उसे अपने परमात्मस्वरूप का भान नही होता और स्वय को पर-कर्म का कर्ता निश्चय से मानता रहता है। निश्चय नय की अपेक्षा से

आत्मा कर्म का कर्त्ता नही, ऐसा सद्गुरु के उपदेश से जब आत्मा जान लेता है, तब वह अनादिकालीन मिथ्यात्व की निद्रा को त्याग कर जाग्रत हो जाता है, और चिन्तन करने लगता है— "मैं परद्रव्य-पुद्गल जड़रूप नही हूं, न यह पुद्गलादि परद्रव्य मेरे हैं" ऐसा भास-ज्ञान होने पर उसे बन्ध कैसे हो सकता है। अत. भली प्रकार जान कर व देख कर स्वय के परमश्रेष्ठ पद को ही ग्रहण करो, उस पद के सम्मुख अन्य पद कभी आत्मा को अच्छे नही लग सकते । प्रमाण, निक्षेप, नय आदि का ज्ञान उस परमतेज के आगे अस्त हो जाते हैं, स्वरूप ज्ञान व भेदज्ञान ही मुक्ति का उपाय है।

'आत्मा पर भाव का कर्त्ता नही' यह विचार कैसे करें ? इसकी रीति बतलाते हैं—

"आठो कर्मो की प्रकृतियो का बन्द, उदय, उदीरण, सत्ता, भोग आदि सभी कर्म सम्बन्धी कार्य पुद्गल-जड़-पररूप हैं। मैं तो इनसे पृथक् स्वतेजोमय ज्ञानादि तेज से पूर्ण कर्म विमुक्त हूँ" यह चिन्तन आत्मा को स्थिर बनाने वाला है, यही आगे के पद्य मे स्पष्ट किया है।

श्रीमद् उदाहरण देते है कि जैसे वायु के स्तम्भित हो जाने पर सरोवर का जल स्थिर हो जाता है, वैसे ही ज्ञाता जीव कर्म को पृथक् समझता हुआ बन्ध मुक्त रहता है । अनन्तज्ञान के स्वामी आत्मा के साथ जो परभाव लगे हुए हैं उन्हे ज्ञानयोग से दूर करता है।

'जो आत्मा स्वयम्भू चेतनस्वरूप, अमल अनन्त बलशाली, त्रैल्योक्य का अधिपति है उसी का स्थिर होकर ध्यान करो और लोक से सम्बन्ध त्याग दो। इस प्रकार आश्रव का नाश होने पर संवर मय-स्वरूप बने हुए आत्मा को कर्म जो आत्मा के लिए अभोग्य हैं, उनसे कौन बाँधकर रख सकता है ? अर्थात् सवर भाव—त्याग सयम मे रहने से कर्म नही बँधते । वर्णादि सभी शरीर के अंग हैं, उस शरीर का धारण कर्म वश होता है, जैसे स्फटिक के पीछे भाँति-भाँति के रगीन पत्र लगा देने से स्फटिक वैसे रग का दिखने

लगता है पर वास्तव में उससे पृथक है। वैसे ही आत्मा भी कर्म संयोग से विभिन्न शरीरादि रूप एवं परपरिणति रूप भासने लगता है। यद्यपि आत्मा स्फटिक के समान उज्ज्वल निर्मल है, तथापि रागद्वेष मोह अज्ञान की उपाधि के कारण संसार में रहता हुआ अज्ञान के वश विकल व्यग्र रहता है। फिर भी अपने ज्ञानादि स्वभाव का त्याग नहीं करता। जैसे स्वर्ण विविध भांति के आभूषणादि का रूप धारण करता हुआ स्वर्ण रूप ही रहता है और कृष्णपक्ष में राहु के कारण चन्द्र कला घटती दिखती है, किन्तु राहु से चन्द्रमा पृथक् है। वैसे ही पुद्गल के संग रहा हुआ आत्मा भी उससे वास्तव में पृथक है।

संसारी आत्मा का स्वरूप

संसारी आत्मा अज्ञानवश पर परिणति रागद्वेष मोह काम आदि आदि को अपनी और स्व की ज्ञानादि शुद्ध परिणति को पर मानता है, अतः रागी द्वेषी अहंकारी मैं हूं ऐसे विकल्प रूप मन से मिला हुआ कर्मों का बंध करके संसार में व्यग्रता पूर्वक भ्रमण करता रहता है। जैसे किसी को भूत लग जाय वह अपना भान भूल जाता है, वैसे ही यह जीव भी मोहभूत वश भान भूलकर कर्म बांधता रहता है। पर संयोग से स्व को पर का कर्त्ता मानता है जब ज्ञान से स्व ज्ञानादि को अपना और पर रागादि भावों को पर मान लेता है और छोड़ देता है तब अकर्त्ता होता है।

जगत् में षड् द्रव्य हैं उनमें एक चेतन द्रव्य के अतिरिक्त सभी 'पर' ज्ञेय हैं, शुद्ध चेतना से युक्त मात्र जीव ही सदा आदेय ग्रहणयोग्य है। धर्मास्तिकाय आदि पांच जड़ और हेय हैं, तथापि ज्ञेय तो हैं ही, अतः स्याद्वादनयपूर्वक उनकी स्पष्ट व्याख्या करता हूं। प्रथम द्रव्य का लक्षण बतलाते हैं।

द्रव्य लक्षण

जो सदा विद्यमान रहे, जिसमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्य होता है, वह सद् का लक्षण है। जो सत् रूप है वह द्रव्य है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी "उत्पाद

व्ययध्रौव्ययुक्त सत्" कहा है। जो अस्तिकाय हैं, वे द्रव्य है । पाँच द्रव्यधर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव अस्तिकाय है। इनमे से चार (पुद्गल के अतिरिक्त) अरूपी है। काल भी अरूपी है, यद्यपि वह औपचारिक द्रव्य है परन्तु छ. द्रव्यों में वह भी एक है।

चार 'द्रव्य-धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अरूप हैं—अखण्ड भाव को धारण करते हुए विद्यमान रहते हैं । इनमे भी अस्तिकाय-धर्म, अधर्म व आकाश तीन पदो—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त हैं। काल अस्तिकाय न होने से उसमे उपर्युक्त त्रिपदी लागू नही पड़ती । ये चारो अपने-अपने गुणो से युक्त लक्षण सहित अपना कार्य करते है। एक दूसरे से पृथक् सत्ता वाले है। इन चारो से ही जीव वियुक्त रहता है। इनसे लिप्त नहीं होता और स्व-सामर्थ्य से सिद्ध होता है।

काल को छोड तीन—धर्म अधर्म आकाश का स्वरूप वर्णन किया है। ये तीनो एक-एक स्कन्ध स्वरूप है अक्रिय हैं। इनमे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, असख्य प्रदेशी, लोकाकाश प्रमाण और अचल है। आकाशास्तिकाय अनन्त प्रदेशी लोकालोक प्रमाण गुण पर्यायवान् एव अक्रिय है । ये सभी यद्यपि जीव के समान ही स्व स्व गुणपर्याय लक्षणादि युक्त हैं; पर ज्ञेय हैं; ध्येय नही। ध्येय तो एक जीव है, जो लोकालोक का ज्ञाता है।

धर्मास्तिकाय का लक्षण

जो पुद्गल और जीव को चलने मे सहायक है वह धर्मास्तिकाय है, वह स्वय अचल व अक्रिय है। यहाँ शका होती है कि जो स्वय अक्रिय है वह जीव व पुद्गल को कैसे प्रेरित करता है ? उसका समाधान जलमीन के दृष्टान्त द्वारा किया गया है। जैसे जल-जलचर जीव-मत्स्यादि को गमन मे सहायक रूप है। जल विना वे चल नही सकते; वैसे ही जीव तथा पुद्गल भी धर्मास्तिकाय के अभाव मे गमन क्रिया नही कर सकते।

अधर्मास्तिकाय का लक्षण

जीव पुद्गल की स्थिति ठहरने में सहायक अधर्मास्तिकाय द्रव्य है। जैसे मध्याह्न समय ग्रीष्मकाल में पथिक को छायादार वृक्ष विश्राम लेने में सहायक बनता है, वैसे ही अधर्मास्तिकाय भी ठहरने में निमित्त या सहायक है।

आकाशस्तिकाय लक्षण

अवकाशदान आकाश का लक्षण है। सारे अन्यद्रव्य स्व स्व गुण पर्याययुक्त इसी आकाश में रहते हैं।

धर्मादि तीन द्रव्यों के सामान्यतया आठ-आठ गुण हैं—

(१) अस्तित्वस्वभाव, (२) वस्तुत्वस्वभाव, (३) द्रव्य स्वरूप, (४) प्रमेयत्व, (५) अगुरुलघुत्व, (६) सप्रदेशत्व, (७) अजीवत्व और (८) अरूपित्व।

तीनों के ये आठगुण जातीय हैं, इनमें कभी व्यभिचार अर्थात् मिलन एवं दूसरे में गमन या मिश्रण अथवा विनिमय नहीं होता।

गति, स्थिति और अवगाहना ये तीनों—धर्म, अधर्म व आकाश के क्रमशः असाधारण गुण हैं। सत् साधारण गुण हैं, जो तीनों में समानरूप से हैं। द्रव्यों के गुण पर्याय का ज्ञान बड़ा गहन विषय है, इसी को समझाने का प्रयास इस ग्रन्थ में है। गुण कह कर अब गुण के पर्याय बताते हैं।

गुण में विकार होना पर्याय कहलाता है। पर्याय दो प्रकार के हैं— (१) स्वभाव पर्याय, (२) विभावपर्याय। अगुरुलघु में विकार शुद्धपर्याय है। हानि वृद्धि रूप से उसके द्वादश भेद होते हैं—

१ *अनन्त भाग हानि।*	१ *अनन्त भाग वृद्धि।*
२ असंख्यात भाग हानि।	२ असंख्य भाग वृद्धि।
३ संख्यात भाग हानि।	३ संख्यात भाग वृद्धि।
४ अनन्त गुण हानि।	४ अनन्तगुण वृद्धि।

५. असंख्यात गुण हानि । ५. असंख्यात गुण वृद्धि।
६. संख्यात गुण हानि । ६. संख्यात गुण वृद्धि ।

अगुरुलघु गुण व उसके ये शुद्धपर्याय छहो द्रव्यो मे समान ही हैं।

विभाव पर्याय

स्कन्ध स्थानगत भेद को लेकर धर्मादि द्रव्यों के विभाव-पर पर्याय कायन होता है। जैसे—आकाश की अपेक्षा से घटाकाश, पटाकाश, मठाकाश आदि।

आकाश के मूल भेद दो हैं- (१) लोकाकाश, (२) अलोकाकाश। लोक अलोक के लक्षण—जहाँ छहो द्रव्य हों वह लोक है। जहाँ मात्र आकाश द्रव्य का ही उत्पाद, व्यय ध्रौव्य होता हो, वह अलोक है। अलोक सादि अनन्त है, वहाँ केवल आकाश रूप अजीव द्रव्य है। लोक मे आकाश के असंख्यात प्रदेश है, उसी मे गुणपर्याययुक्त छहो द्रव्य रहते हैं।

शंका—लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं। उन्ही मे असंख्यात प्रदेश वाले अन्य धर्मादि द्रव्य कैसे रह सकते है? क्योंकि जीव अनन्त हैं। वे भी तो असंख्यात प्रदेश वाले हैं और पुद्गल द्रव्य के सूक्ष्म अणु लोकाकाश व अलोकाकाश प्रमाण अनन्त हैं तथा काल की भी समय-समय अनन्त वर्तना है। इन सब का आधार लोकाकाश तो मात्र असंख्यात प्रदेश वाला है, धर्मादि पाँच ही आधेय है जिनमे दो अनन्त हैं। इतने छोटे स्थान मे उन सबका समावेश कैसे हो सकता है?

समाधान—एक पात्र जल से भरा हुआ है, उसमे तदुचित शर्करा डाली जाय वह गल जाती है, नमक की एक डली डाली जाय, वह भी उसी मे मिल जाती है, फिर उसी मे राख भी डाल दी वह भी जम गयी, पुनः सूइयो का समूह लेकर उसी मे एक-एक करके अत्यन्त समीप रूप से खोस दी जाय इन सभी का जलपात्र मे समावेश हो जाता है। सभी पदार्थ पृथक्-पृथक् सत्ता के धारी हैं, फिर भी सर्व का समावेश जल मे हो जाता है, वैसे ही

लोकाकाश में अवगाहगुण की शक्ति के कारण अन्य पांचों द्रव्यों का भी समावेश हो जाता है।

जैन दर्शन की मान्यता के विपरीत अन्य दार्शनिकों की मान्यता है। वे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय को नहीं मानते। उनका कहना है कि दोनों द्रव्य कल्पनामात्र हैं। वास्तव में हैं नहीं क्योंकि ये प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाण से ग्राह्य ही नहीं है। जैन दार्शनिक कहते हैं—ये काल्पनिक नहीं, आप्तकथित आगम व अनुमान से भी सिद्ध हैं, वास्तविक व नित्य हैं। जैसे अनुमान से इन्द्रिय व मनग्रहीत भाव भी संसार में सत्य हैं। वैसे ही धर्मादि भी जीव पुद्गल की गति व स्थिति में सहायक होने से सत्य हैं। इनके बिना गति व स्थिति नहीं हो सकती।

आधुनिक विज्ञान भी गति में सहायक 'ईथर' नामक तत्व स्वीकार करता है। जैसे दधि में घृत दिखता नहीं, पर है अवश्य, वैसे ही धर्मादि अरूपी होने से दिखते नहीं, पर निश्चित रूप से जगत् में विद्यमान है।

कालवादी कहते हैं कि गति स्थिति काल के आधीन है। बुद्ध (बौद्ध) की मान्यता है कि एक द्रव्य दो क्रिया नहीं कर सकता। तुम्हारे मतानुसार काल नव पुरातन क्रियाएँ करता है। ये दो क्रिया अकेला काल नहीं कर सकता।

पंचभूतवादियों की मान्यता है कि जल अग्नि, वायु आदि एवं गति, स्थिति आदि सभी कार्य पृथ्वी के ऊपर होने से पृथ्वी के आधीन हैं। बुद्ध का उत्तर है—वायु आदि भूत तथा जीव और जड इन सब की शक्ति पृथक् पृथक् है, ये गति स्थिति में सहायक रूप नहीं बनते। उत्तर—जीव और पुद्गल की गतिस्थिति में धर्मास्ति व अधर्मास्ति द्रव्य सहायभूत हैं। जीव इनका ज्ञाता भी है, क्योंकि वह ज्ञानगुण युक्त है। अतः धर्मास्ति व अधर्मास्ति ये दो द्रव्य जिनके बिना गति स्थिति नहीं हो सकती, अविनाभाव से लोकाकाश में विद्यमान रहते हैं।

कालद्रव्य के लक्षण

इसकी परिणति वर्तना स्वरूप है और यह नवीन को जीर्ण बनाने रूप क्रियाशील रहता है, नवीन वस्तु समय व्यतीत होने पर जीर्ण होती है, यह प्रत्यक्षरूप से प्रमाणित है, अत: काल का असाधारण लक्षण भी यही है।

कालद्रव्य भी यद्यपि उपर्युक्त अस्ति आदि आठ गुण युक्त है, तथापि अप्रदेशी और समय पृथक्-पृथक् होने से कायरूप नहीं है। वर्तना के हेतु भूत ये विशेषगुण जिनेश्वरदेव ने काल के भी कहे हैं। अगुरुलघुत्व के पर्याय स्व पर रूप से उसमे रहते हैं। वर्तना स्वपर्याय और आवलिका, मुहूर्त, दिन रात्रि आदि अनन्त पर पर्याय है। इन्ही मे उत्पाद व्यय और ध्रौव्य होता है। काल द्रव्य अनन्त समय वाला है। वर्तनारूप से नरक्षेत्र—अढाईद्वीप मे वर्त्तता है।

शका—आपने काल की वर्तना नरक्षेत्र प्रमाण बतलायी और "उत्पादादि त्रिपदी समस्तलोक मे होती है और समय-समय होती रहती है" यह विपरीत कथन समझ मे नहीं आता है, अतः कृपया स्पष्ट समझाइये ?

समाधान—हम प्रमाण का पक्ष लेकर ही ऐसा कहते हैं। नरक्षेत्र में भी त्रिपदी तो काल की होती है, साथ-साथ सूर्यचन्द्र के कारण दिन रात्रि आदि का भी समयविभाग होता है वर्त्तना इसे ही कहा है। उत्पाद और ध्रौव्य शाश्वतरूप से छहो द्रव्यो मे होता है, ऐसा ज्ञानियो—सर्वज्ञ सर्वदर्शी केवलज्ञानियो ने अपने ज्ञान दर्शन से जाना देखा है; अतः वैसा ही उपदेश मे कहते और गणधर भगवान् उसी अर्थ को सूत्ररूप गूंथ कर आगमरूप से प्रकट करते हैं। उसी आगमप्रमाण से हम कहते है। त्रिकालवर्त्ती सभी ज्ञानिजन-सर्वज्ञ-काल को सदा अनन्त समयात्मक देखते हैं।

किसी अन्य आचार्य का कथन है कि कालद्रव्य अनन्त नही असख्यात है रेणुक है स्थिर है, लोकप्रदेश परिमित है, एक-एक रेणुक मे अनन्त अनन्त

'समय' प्रगट होते रहते हैं। समय पृथक् पृथक् हैं और कभी मिलते नहीं अत अस्तिकाय नहीं कहलाते । अनन्तकाल व्यतीत हो गया उतना ही अनन्त अनागतकाल है। वह अप्रदेशात्मक और परिणामी है।

वास्तविक काल स्वरूप

काल को मनुष्य क्षेत्र परिमित व्यवहार में कहा है। निश्चय से पाँचों द्रव्य धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय वर्त्तना ही कालस्वरूप है, काल अस्तिकाय ही नहीं है, तो सद्रूप न होने से उसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी नहीं होता, अत काल औपचारिक द्रव्य है। वास्तविक द्रव्य पाच ही हैं।

यद्यपि धर्मादि पाँच द्रव्यों में त्रिपदी होती रहती है, अगुरुलघुत्व पर्याय भी चारों में ही जीव के समान हैं, वे भी अरूपी, अखण्ड, अज, अनादि, अनन्त, सद्रूप एक दूसरे से सदा असंमिल और लोक प्रमाण हैं, सप्रदेशी हैं। इत्यादि जीव समान गुणवाले होने पर भी अजीव जड होने से ध्येय नहीं हैं। ध्येय तो मात्र ज्ञान चलनावान् जीव है, वही अनन्तत्रिगुण—ज्ञानदर्शनचारित्र वाला, देवों में चन्द्रमा के समान और ब्रह्मज्ञान का निधान होने से उपादेय है।

॥ इति प्रथम अधिकार ॥

द्वितीय अधिकार

अरूपी और जड ऐसे चार द्रव्यों—धर्म, अधर्म, आकाश और काल का वर्णन प्रथम अधिकार में किया गया। अब रूपी जड पुद्गल को संक्षेप से बतलाते हैं। इससे पूर्व पुद्गल संयोग से आत्मा कैसा और क्या बन जाता है? इसे कहते हैं—

जिस प्रकार समुद्र का जल, तीव्र वायु के योग से अत्यन्त ऊँचा उछलने लगता है, मन्दवायु से भी छोटी तरङ्गावलि युक्त चञ्चल ही रहता है। स्थमान भी कभी स्थिर नहीं रहता, वैसे ही यह चेतनराज भी यद्यपि स्वरूप

से अमल स्थिर अखण्ड रूप से अनन्त ज्ञान शक्ति युक्त है, तथापि कर्मप्रेरित मोह के पवन से देहादि मे ममत्व भाव धारण करता हुआ दुःखी होता रहता है।

जिस प्रकार मृत्तिका जल संयोग से घट दीपकादिरूप सुन्दर आकार धारण करके तद्रूप दृष्टि गोचर होती हुयी तत्तत् कार्य करती हुई मृत्तिका भी ही है। उसी प्रकार अष्ट कर्मजल के संयोग से आत्मा भी चार गति रूप संसार मे विविध प्रकार के शरीर धारण कर सुख दुःख भोगता हुआ भी अखण्ड चेतनत्व युक्त सदा ध्रुव नित्य है। अपने ज्ञानादि गुणों सहित आत्मा अमल अखण्ड रूप को जब पूर्ण रूपमे रत्नत्रय की आराधना द्वारा प्रकट कर लेता है तब वही सिद्ध कहलाता है। उस सिद्ध स्वरूप को नमस्कार करके श्रीमद् देवचन्द्र गणि महोदय कहते हैं कि ऐसे आत्मा के अतिरिक्त मोक्ष का साधक अन्य धर्मादि अचेतन द्रव्य नहीं हो सकते।

पुद्गल द्रव्य-पूरणगलन स्वभाव वाला अस्तिकाय और मूर्त्तरूप है, स्पर्श वर्णगन्ध और रस स्वरूप है। गुण पर्याय युक्त है। उसमे भी आठ गुण है— १. अस्तित्व २. वस्तुत्व ३ द्रव्यत्व ४. प्रमेयत्व ५. अगुरुलघुत्व ६. सप्रदेशत्व ७. अजीवत्व और ८. रूपित्व । ये सामान्य गुण है। पूरणगलन विशेष गुण है। षड्गुण हानि वृद्धि रूप मूल पर्याय है। द्व्यणुकादि स्कन्ध रूप परपर्याय है हैं। अणु अनन्त हैं प्रत्येक अणु मे एकवर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श ये ५ गुण है। ये भी मूलपर्याय स्वरूप हैं। अणु परिणामी होने से उसमे अन्य अणु से मिल जाने की शक्ति सदा वर्त्तमान रहती है। द्वयणु त्र्यणुक, संख्यात अणुक, असंख्यात अणुक और अनन्त अणुक के स्कन्ध बन सकने की शक्ति और सामर्थ्य होने व बनने से अस्तिकाय कहलाता। ऐसे पुद्गल द्रव्य सम्पूर्ण (लोकालोक) आकाश प्रदेश जितने है। चोपड खेलने के सारिपासे के संस्थान (आकार) वाले अनन्त स्कन्ध हैं। वे पुद्गल द्रव्य, अणु रूप एवं स्कन्ध रूप है। स्कन्ध भी दो प्रकार के है—जीवगृहीत, जीव अनगृहीत। जीवगृहीत अणु कार्मणादि कहलाते हैं, शेष अणु स्कन्धादिरूप हैं।

युक्त अणु अनन्त हैं, वे भी मिलकर स्कन्ध बन जाते हैं। स्कन्ध रूप बने हुये बिखर कर अणुरूप बन जाते हैं। इस प्रक्रिया को पूरण–गलन कहते हैं। ऐसा कहने वाले कि अणु अनन्त हैं, स्कन्ध अनन्त नहीं, वे शास्त्र ज्ञान हीन मूढ़ हैं। यदि ऐसी मान्यता है तो 'द्रव्य पुद्गल' परावर्तन फिर कैसे घट सकता है ? अणु की जीव के समान ही गति है और स्थिति तो अनन्तकाल की अर्थात् नित्य है। अब स्कन्ध का स्वरूप कहते हैं—छाया, आतप, तेज, अन्धकार, प्रभा, उद्योत, शब्द, वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श ये पुद्गल के रूप हैं। पुद्गल का स्वभाव मिलना, बिखर जाना, लघु या स्थूल रूप धारण करना आदि है। ये सब स्कन्ध रूप हैं। इनमें से भी कितनेक इन्द्रिय ग्राह्य और कितनेक इन्द्रिय अग्राह्य हैं। स्कन्ध तीन प्रकार के हैं—संख्यात अणुवाले, असंख्यात अणु वाले और अनन्त अणुवाले। ये सब अचेतन जड़ ज्ञानहीन और हेय तथा ज्ञेय हैं, उपादेय तो मात्र चेतन स्वरूप ज्ञाता जीव ही है।

कर्म प्रकृति विवरण १ बन्ध हेतु

जीव के कर्म बन्ध कैसे होता है ? अब यह बतलाते हैं—अनादिकाल से आत्मा कर्म संयोग के कारण मिथ्यात्व भाव में लीन बना हुआ है, अर्थात् आत्म भाव को विस्मृत कर पुद्गल में रमण कर रहा है, अतः अविरति में क्रोधादि कषाय युक्त ही प्रवृत्ति करता रहता है इन सबके उत्तर भेद सत्तावन (५७) हैं—पाँच मिथ्यात्व—१ आभिग्रहिक २ अनाभिग्रहिक ३ आभिनिवेशिक ४ सांशयिक और अनाभोगिक (इनका विस्तृत अर्थ अन्यत्र देखें, यहाँ सार मात्र लिखना है अतः नामनिर्देश ही किया है)

बारह अविरति—१ स्पर्शेन्द्रिय अविरति २ रसनेन्द्रिय ३ घ्राणेन्द्रिय ४ चक्षुरिन्द्रिय ५ श्रोत्रेन्द्रिय ६ मन की अशुभ प्रवृत्ति ७ पृथ्वीकाय ८ अप्काय ९ तेजस्काय १० वायुकाय ११ वनस्पति और १२ त्रसकाय की हिंसा में प्रवृत्ति।

पच्चीस कषाय—१. अनन्तानुबन्धी क्रोध, २. अनन्ता० मान ३. अनन्ता० माया, ४. अनन्ता० लोभ, ५. अप्रत्याख्यानी क्रोध, ६. अप्रत्या० मान, ७. अप्रत्या० माया, ८. अप्रत्या० लोभ, ९. प्रत्याख्यानी क्रोध, १०. प्रत्या० मान, ११. प्रत्या० माया, १२. प्रत्या० लोभ, १३. संज्वलन क्रोध, १४. संज्व० मान, १५. संज्व. माया, १६. संज्व लोभ एवं १७. हास्य, १८. रति, १९. अरति, २०. भय, २१. शोक, २२. जुगुप्सा, २३. स्त्रीवेद, २४. पुरुषवेद, २५. नपुंसक वेद।

पनरह योग—चार मनो योग—१. सत्य, २. असत्य, ३ मिश्र, ४. व्यवहार मन। चार वचन योग—५. सत्य, ६. असत्य, ७. मिश्र, ८. व्यवहार वचन। सात काय योग—९. औदारिक, १०. औदारिक मिश्र ११. वैक्रियक, १२. वैक्रियक मिश्र, १३. आहारक, १४. आहारक मिश्र, १५. कार्मण।

इन सत्तावन हेतुओं से जीव, कर्म बांधता है। बन्ध चार प्रकार का है—१. प्रकृति बन्ध, २. स्थिति बन्ध, ३. अनुभाग-रसबन्ध, ४. प्रदेश बन्ध। प्रकृति का अर्थ स्वभाव हैं, स्थिति का काल निश्चय, रस-शुभाशुभ। कर्मदल का संचय प्रदेश बन्ध है। इसे मोदक के दृष्टान्त से समझना चाहिये—जिस पदार्थ का मोदक बनाना है, वह प्रकृति है, कर्म प्रकृति मूलतः आठ होती हैं। उत्तर भेद एक सौ अट्ठावन (प्रकृति) होते हैं। इनका बन्ध होना प्रकृति बन्ध है। मोदक के ताजा गुणकारी या अवगुणकारी रहने का समय स्थिति बन्ध है। शुभाशुभ विपाक देने की शक्ति रसबन्ध है, जैसे मोदक की चाशनी के अनुसार मोदक मे मीठापन या कटुत्व होता है। कर्मदल का संचय कम अधिक रूप मे होना प्रदेश बन्ध है, जैसे मोदक का छोटा बड़ा होना।

कर्म प्रकृतियाँ

कर्म-की मूल प्रकृतियाँ—१. ज्ञानावरणीय कर्म, २ दर्शनावरणीय कर्म, ३. वेदनीय कर्म, ४. मोहनीय कर्म, ५. आयुकर्म, ६. नामकर्म, ७. गोत्रकर्म, ८. अन्तराय कर्म।

१ ज्ञानावरणीयकर्म—यह आत्मा के ज्ञानगुण को आच्छादित करता है। जैसे नेत्रों पर पाटा बांध दिया जाय तो दिखायी नहीं पड़ता। इसके पांच भेद हैं—मतिज्ञानावरणीय कर्म, श्रुत ज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय *मन पर्ययज्ञानावरणीय, केवलज्ञानावरणीय*। इसके २ भाव हैं—क्षायिक व क्षायोपशमिक। सर्वथा आवरण हट कर ज्ञान का पूर्ण प्रकट होना अर्थात् केवलज्ञान होना क्षायिक भाव और अन्य चार ज्ञान होना क्षायोपशमिक भाव हैं। बन्ध में से कुछ क्षय और कुछ उपशम हो, यह क्षायोपशमिक भाव है।

२ दर्शनगुण को आच्छादित करने वाला दर्शनावरणीय कर्म है, इसे प्रतिहार के दृष्टान्त से समझना चाहिये। जैसे राजा के दर्शन करने की इच्छा वाले को प्रतिहार द्वारपाल रोक लेता है वैसे ही आत्मा की दर्शन शक्ति को यह कर्म रोक लेता है। इसके नव भेद हैं—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि। इसके तीन भाव हैं—क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव औदयिक भाव। केवलदर्शन सम्पूर्ण कर्म का क्षय होने से व अन्य तीन—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन क्षायोपशम होने से होते हैं। मोहोदय में कारण रूप है।

३ वेदनीय कर्म आत्मा के अव्याबाध गुण को हरण करने वाला, साता व असातारूप है। इसमें भी दो भाव हैं, मधुलिप्त असि के जैसा है। साता मधुरूप व असाता असि—तलवार स्वरूप है।

४ मोहनीय कर्म दो प्रकार का है—दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय। दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं—मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, सम्यक्त्व-मोहनीय। इसका स्वभाव मद्य मदिरा के जैसा है। मिथ्यात्वमोहनीय का स्वरूप—इसके उदय से प्राणी शरीर से प्रीति करने वाला इसका वियोग करने वाला अनीति का प्रेमी, पुण्यपाप का अभिलाषी, जीवाजीवविवेकहीन, स्वपर से अज्ञात, बाह्य संयम, तप, अहिंसा का पालन, आन्तरिक ज्ञान व भक्ति से शून्य होता है। यह मिथ्यात्व जिनेश्वरदेव की कृपा से ही किसी

प्राणी का दूर होता है । प्रायः सम्पूर्ण विश्व के अधिकांश जीव इसी मिथ्यादर्शन वाले हैं ।

मिश्रमोहनीय—इस दृष्टि वाले जीव वीतरागदर्शन पर न राग रखते है न द्वेष । जैसे नारियल द्वीपवासी जीव अन्न न मिलने से नारियल ही खाते हैं, परन्तु उनका अन्न पर द्वेष या राग नही होता । वैसे ही ये जीव भी होते हैं ।

सम्यक्त्व मोहनीय—इस दृष्टि वाले जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं । सम्यक्त्व के उपशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य इन पांच लक्षणयुक्त, शरीरादि परभावो से विरक्त, उत्तमनीतियुक्त, ज्ञान दृष्टि सम्पन्न, निःशंकित्वादि दर्शन के आठ आचार के पालक, अतरंग व बाह्य शान्तिवान्, इन्द्रिय सुखो से विमुख, मुक्ति के सम्मुख रहते हुये, अपनी ज्ञान दृष्टि मे वर्त्तते हुये, पापो का नाश करने वाले देवगुरु धर्म के प्रति प्रशस्त राग युक्त होने से सम्यक्त्व मोह वाले होते है । मिथ्यात्वदलिक तो है, पर उज्ज्वल होते है । सर्वघादलिको का नाश न होने से ये क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन वाले है । पवित्र श्रद्धायुक्त रुचि वाले होने पर भी कभी २ शंकादि ५ अतिचार लग जाते हैं, अतः क्षायिक सम्यक्त्व नही होता । क्षायिक मे दर्शन मोह का सर्वथा नाश हो जाता है ।

चारित्रमोहनीय—इसके २५ भेद है । बन्ध के सत्तावन भेदो मे २५ कषाय के नाम आगये हैं । इस कर्म के उदय से जीव को देश या चारित्र नही आता ।

५. आयु कर्म के चार भेद हैं—नरकायुः तिर्यगायुः मनुष्यायुः देवायुः । इसको कारागार के समान बतलाया है । यह भव विपाकी कर्म है, अर्थात् एक भव मे भोगा जाता है । जिस गति का आयु बँधता है, उसमे उतने काल तक जीव को रहना पड़ता है, जैसे कैदी को कारागार मे ।

६. नामकर्म के ९३ या १०३ भेद है । इनमे १४ पिंड प्रकृति कहलाती है ।

४ गति—नरक, तिर्यग्, मनुष्य, देव ।

५ जाति—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय ।

५ शरीर—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस् और कार्मण ।

३ अगोपांग—औदारिक, वैक्रियक, आहारक ।

१५ बन्धन—१ औदारिक औदारिक २ औदारिक तैजस ३ औदारिक कार्मण ४ औदारिक तैजस् कार्मण, ५ वैक्रियक वैक्रियक ६ वैक्रियक तैजस् ७ वैक्रियक कार्मण ८ वैक्रियक तैजस् कार्मण ९ आहारक आहारक १० आहारक तैजस् ११ आहारक कार्मण १२ आहारक तैजस कार्मण १३ तैजस तैजस १४ तैजस कार्मण १५ कार्मण कार्मण ।

५ संघातन—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्मण ।

६ संहनन—वज्रर्षभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच कीलिका, असंप्राप्त या छेवट्टा ।

६ संस्थान—समचतुरस्र, न्यग्रोध, सादि, वामन, कुब्ज, हुण्डक ।

५ वर्ण—कृष्ण नील, रक्त, पीत, श्वेत ।

२ गन्ध—सुरभि-सुगन्ध, दुरभि दुर्गन्ध ।

५ रस—तिक्त कटु, कषाय, अम्ल, मधुर ।

८ स्पर्श—कठोर, मृदु गुरु, लघु शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष ।

४ आनुपूर्वी—नरकानुपूर्वी, तिर्यगानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी ।

२ विहायोगति—शुभविहायोगति, अशुभविहायोगति । यों १४ से ७५ उत्तर भेद होते हैं ।

८ आठ प्रत्येक प्रकृति—परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरु लघु तीर्थकर, निर्माण, उपघात ।

१० त्रसदशक—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सौभाग्य, सुस्वर आदेय, यश कीर्ति ।

१० स्थावरदशक—स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ दौर्भाग्य, दुःस्वर अनादेय, अयश कीर्ति ।

पांच बन्धन मानने से ९३ और १५ बन्धन लेने पर सर्व १०३ भेद है। सत्ता उदय उदीरणाबन्ध आदि कर्मग्रन्थादि से जानना चाहिये।

७ गोत्र कर्म—इसके दो भेद हैं—उच्चैर्गोत्र, नीचैर्गोत्र। यह आत्मा के अगुरुलघु गुण को आवरित करता है।

८ अन्तराय कर्म—इसके पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। यह अनन्त शक्ति का रोधक है।

आठ कर्मों मे प्रत्येक की उत्कृष्ट स्थिति—	जघन्य स्थिति
ज्ञानावरणीय कर्म की—३० तीस कोडाकोडी सागरोपम।	अन्तर्मुहूर्त
दर्शनावरणीय कर्म की—तीस कोड़ाकोटी सागरोपम।	अन्तर्मुहूर्त
वेदनीय कर्म की— ३० तीस कोड़ाकोडी सागरोपम।	१२ मुहूर्त
आयु कर्म की—तेतीस सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त
मोहनीय कर्म की—सत्तर कोडाकोड़ी सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त
नामकर्म की—बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम।	आठमुहूर्त
गोत्र कर्म की— ,,	,,
अन्तरायकर्म की—तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की।	अन्तर्मुहूर्त।

रस बन्ध—उत्कृष्ट रस सर्वघाति प्रकृति का होता है। देशघाति का मध्यरस, अघाति का हीन रस होता है। वर्णगन्ध और स्पर्श मे रस अनन्त गुण होता है। जब तक रस अनन्त नही होता तब तक कर्म का बन्ध नही होता।

प्रदेश बन्ध, अष्ट वर्गणा—औदारिक वर्गणा, वैक्रयिक वर्गणा, आहारक वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, श्वासोच्छ्वास वर्गणा, कार्मणवर्गणा। ग्राह्य व अग्राह्य दोनो प्रकार की अनन्त वर्गणाएं हैं। विस्तार अन्य ग्रन्थों मे है; यहाँ नाम निर्देश मात्र है।

आत्मा मोहकर्म के पाश में आबद्ध हुआ आठों कर्मों का बन्ध करता है। सबसे न्यून आयुकर्म के दलिक, उनसे अधिक नाम व गोत्र कर्म के, उनसे अधिक ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अन्तराय के उनसे अधिक मोहनीय कर्म के और उससे भी अधिक वेदनीय कर्म के दलिकों का बन्ध करता है। अन्य में कम अणु दत्त आते हैं। सरस नीरस भोजन के दृष्टान्त से वेदनीय समझना चाहिये।

सर्वघाति परमाणु अधिक और देशघाति परमाणु थोड़े बांधता है। जीव की अनन्त शक्ति से परिणामों के अनुसार इनका विभाजन तत्क्षण हो जाता है। इस प्रकार बहुत से कर्म दलों से विविध प्रकार का कर्मबन्ध होता रहता है। फिर भी आत्मा के आठ रुचक प्रदेश सर्वदा मुक्त रहते हैं और शेष प्रदेशों को चारों ओर से वेष्टित कर प्रत्येक प्रदेशों के साथ अनन्त अनन्त कार्मण वर्गणा बंधी हुयी है।

यद्यपि पुद्गल प्रकट रूप से स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं और चेतन गुप्त रहता है। इसका कारण है पुद्गल रूपी हैं और जीव अरूपी है, फिर भी पुद्गल ज्ञाता नहीं वह अचेतन है, जीव चेतन होने से ज्ञाता है वह लोकालोक का जानने की ज्ञान शक्ति से सम्पन्न है और वीर्य की भी अनन्त शक्ति युक्त है किन्तु अनादि काल से कर्मों से बद्ध होने पर भी निश्चयनय की दृष्टि से मुक्त और व्यवहारनय की अपेक्षा से कर्मबद्ध है। आत्मा के तीन गुण ज्ञान दर्शन चारित्र सदा अक्षय हैं और ज्ञान का समुद्र है। अपने चिद् स्वभाव को कभी नहीं छोड़ता।

" इति द्वितीय अधिकार "

तृतीय अधिकार

(पुद्गल)

पुद्गल द्रव्य का वर्णन कर अब क्रम से जीवद्रव्य का वर्णन करते हैं।

तीनों काल अर्थात् भूत वर्तमान और अनागत में जो सदा चेतनायुक्त और ज्ञानादि गुणों की सम्पत्ति से सम्पन्न रहता है, पर पुद्गल से सर्वथा

भिन्न अलिप्त रहता है, वह जीव है। वह न कर्म का कर्त्ता है न भोक्ता, रसादिस्पर्श से युत, असख्य प्रदेशवान्, चेतना मे रमण करने वाला, अग्नि आदि छः प्रकार के गुण युक्त, परभाव-पुद्गल-विषय कषायादि से भावित होने पर भी सदा स्वभाव मे ही निवास करने वाला, स्व पर भाव और भव-संसार की भीति से मुक्त, अनन्त आनन्दमय, सत्, सत्तायुक्त, अक्षय, रत्नत्रय का स्वामी और देवो मे चन्द्र के समान है। (यहाँ श्रीमद् का स्वनाम युक्ति निवेशित है।)

जीव द्रव्य के चार पर्याय होते है—स्वभाव, विभाव, द्रव्य और व्यञ्जन। अगुरुलघु गुण मे विकार-स्वभाव। षट्गुण हानिवृद्धि रूप द्रव्य, नर नारक तिर्यग और देव विभाव पर्याय हैं इसे परपर्याय कहते हैं मतिज्ञानादि रूप व्यञ्जन पर्याय हैं अर्थात् इनके द्वारा चेतना की व्यक्ति होती है पूर्ण स्वभाव द्रव्य और व्यञ्जन इन पर्यायो से युक्त जीव चरिम शरीर की त्रिभागन्यून अवगाहना से युक्त वाला सिद्धावस्था (मुक्ति) मे रहता है। ज्ञानादि अनन्त चतुष्क व्यक्त हो जाने से पूर्ण व्यञ्जनपर्याय, सदा स्वभाव पर्याय, मात्र आत्म द्रव्य स्वरूप बन जाता है। वहाँ स्वरूप का कर्ता भोक्ता और स्वामी बनकर अनन्तकाल पर्यन्त उसी रूप मे रहता है।

प्रश्न—एक द्रव्य एक समय मे एक ही क्रिया का कर्त्ता है। दो द्रव्य एक क्रिया नही कर सकते और न दो क्रिया एक द्रव्य करता है। यहाँ शिष्य प्रश्न करता है—कि अशुद्ध निश्चय की अपेक्षा से आत्मा रागादि समूह से व्याप्त होकर तद्रूप बनकर कर्म का बन्ध करता है, उसका उदय होने पर व्यवहार से वेदक स्वभाव ग्रहण कर गत समय मे की गयी कर्म बन्ध रूप क्रिया का फल भोगता है। कृत कर्म भोगते हुए नवीन का बन्ध करता है। तब एक समय मे दो क्रिया एक ही जीव द्रव्य कैसे करता है? इस विषय मे मुझे सन्देह है, अतः कृपया इसे स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनय कीअपेक्षा से आत्मा स्वभाव का ही कर्त्ता है। ज्ञान स्वरूप वीतराग वीतद्वेष होने पर गुणराशि—रत्नत्रय की वृद्धि होती

है। किन्तु कर्मबद्ध आत्मा पर संयोग के कारण विभाव में रमण करने वाला अज्ञान का ही मान पूर्ण बना हुआ है। अतः द्रव्यतः कर्म की उपाधि लगी हुई है। इसी कारण दोनों कार्य बंध और भोग एक साथ करता हुआ भासित होता है। सभी द्रव्य अपने ही स्वरूप में रहते हुए हुए स्वभाव के ही कर्त्ता भोक्ता होते हैं। अनादि काल से कर्म राग के वश हो आत्मा पर भाव कर्त्ता भोक्ता बन गया है। भोग और बंध वास्तव में एक सामयिकी क्रिया नहीं, एक जीवद्रव्य की क्रिया है, और मिथ्यात्व अविरति कषाय आदि के कारण कर्म का बंध कर कर्म फल को भोगता है। ऐसे भोग और बंध साथ २ होते रहते हैं।

अज्ञानी जीवों को रागादि परभाव आत्मा के ही दिखाई पड़ते हैं, परन्तु वे वास्तव में आत्मा के नहीं। क्योंकि रागादि द्रव्य कर्मों का अवरोध कर जो आत्मा निर्मल बोध ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र युक्त आत्मा रागादि दोषों का नाश करता हुआ केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर लेता है।

सम्यक् ज्ञानादि युक्त ध्याता आत्मा भेदज्ञान पूर्वक ध्यान करता हुआ कर्म का बन्ध अनुभाग व स्थिति रूप बन्ध नहीं करता। यह आत्मा के ज्ञान को क्रोध रूप न मान कर ज्ञान को ज्ञानरूप, क्रोधभाव को क्रोधमय मानता है। वास्तव में है भी ऐसा ही। ज्ञानस्वरूप आत्मा में क्रोधादि राग द्वेष मोहादि नहीं है, क्योंकि ये आत्मा का स्वभाव नहीं कर्म के स्वभाव रूप हैं। शुद्धात्मध्यान में तो स्वभाव का ध्यान किया जाता है। तथा भेदज्ञान पूर्वक ध्यान करता कर्म बन्ध से मुक्त रहता है। अशुद्ध मोहादि कर्म को ग्रहण नहीं करता। जीव चेतनामय है कर्म रागादि पुद्गल रूप है। श्री जिनवर भगवान् ने द्रव्यों के गुण और कार्य भिन्न भिन्न बताये हैं।

जब आत्मा ज्ञान द्वारा जीव व कर्म का भेद जान लेता है तब कर्म आने के हेतु मिथ्यात्व अविरति और कषाय योग के आस्रव का त्यागकर

और आप ही ध्याता, ऐसे तीनों का ऐक्य हो जाने से शुद्ध ज्ञान की द्विगुण वृद्धि हो जाती है और कर्म का प्रवाह रुक जाता है, जिससे राग द्वेष न्यूनतम हो जाते हैं। भव समुद्र के तीर पर पहुंच जाता है।

स्याद्वाद दृष्टि से चेतन का स्वरूप जैनदर्शन में इस प्रकार है— आत्मा सद्रूप होने से 'उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त 'सत्' इस सद् लक्षण युक्त है। गुणों व पर्यायों में प्रत्येक समय उत्पाद व्यय और ध्रुवता होती रहती है। आत्मा स्वरूप की अपेक्षा से, एक व भी है और सत्ता की अपेक्षा से अनेक भी हैं। कर्त्ता और अकर्त्ता भी है। भोक्ता अभोक्ता भी है। वह दृष्ट-ज्ञाता, शुद्ध ब्रह्मरूप मतिज्ञानादि चेतना स्वरूप है। पूर्ण प्रकाश केवलज्ञान होने पर सिद्ध रूप बन जाता है। ऐसा शुद्ध चेतन क्षणिक शरीर की संगति से नट के समान इस संसार रूप क्रीडाङ्गण में विभिन्न प्रकार के शरीर धारण कर नित्य नये खेल करता रहता है, यह कैसा विस्मयकारी है! यहां प्रश्न होता है कि अत्यन्त जाति भेद होने पर भी जीव और जड़ का पारस्परिक सम्बन्ध कैसे हो रहा है? उत्तर—विषय, पुद्गल-मिथ्यात्व कषायादि भाव जीव को मूर्छित कर देते हैं, जैसे मदिरापान से बुद्धिविभ्रम हो जाता है वैसे ही कर्म बद्ध आत्मा भी स्वभान भूला हुआ रहता है। मोहनीयादि कर्मों की प्रकृतियाँ चुम्बक के समान आकर्षण गुण वाली हैं, इनके कारण नव नव कर्म पुद्गल आकर आत्मा के चिपक जाते हैं। और ज्ञानावरणीयादि कर्म आत्मशक्ति ज्ञानादिगुणों को ढँक लेते है, अज्ञान से विकल बने हुए चेतन को कर्मों की जञ्जीर से बाँधकर अन्य कर्म संसार में भ्रमण कराते रहते हैं।

यहाँ प्रश्न होता है कि क्या जड़ पुद्गल के अणुओं में इतनी शक्ति होती है कि वह अनन्त बलशाली आत्मा के ज्ञानादिगुणों को आवृत करके उसकी चेतना शक्ति को ही पूर्णतया मूर्छित कर दे? उत्तर—जी हाँ! इसे दृष्टान्तों से समझिये—जैसे कोई पुरुष सदाचारी है, किन्तु मद्यपान कर लेने पर वह उन्मत हो, अकार्य तत्पर होता है, अत्यधिक पान कर लेने पर मूर्छित

तक हो जाता है, वैसे ही आत्मा भी दर्शनावरणीय कर्म के उदय से स्त्यानर्द्धि-निद्रावश हो निगोदादि में मूर्छित ही रहता है। ज्यों ज्यों दर्शनावरणीय कर्म भोग देकर उससे हटता है, त्यों त्यों उसकी मूर्च्छा घटने लगती है फिर भी प्रभावित बना हुआ ऊँघता रहता है। वैसे ही आत्मा भी पंचेन्द्रियत्व प्राप्त कर लेने पर भी मोह-मिथ्यात्व के प्रभाव से अनभिज्ञ रह कर अकार्य में रागादि में तत्पर होता रहता है। विकास में ब्राह्मी आदिपत्नियों के समान ज्ञान दया/दान, सहनशीलता के प्रभाव से बुद्धि के विकास के सदृश ज्ञानादि का भी विकास होने लगता है। वास्तव में चेतन के साथ अज्ञान का अनादि सम्बन्ध है। ऐसा न मानने पर सभी कार्य पाप तप संयम मुक्ति आदि आकाश पुष्पवत् असम्भव हो जाते हैं। जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध अनादि होने पर भी वह अपना स्वरूप छोड़कर जड़ पुद्गल नहीं बनता। यहाँ प्रश्न होता है कि स्वभाव और विभाव की अनादि सत्ता मानने पर तो एकता (जीव कर्म की) का प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है और द्वैतभाव (पृथक् सत्ता) ही नहीं रहता। फिर तो ज्ञान के समान ही सदाकर्म का भी सम्बन्ध रहना चाहिये।

उत्तर—स्वर्ण खान में से निकलता है, वह अनेक अतिरिक्त मिट्टी आदि से मिला हुआ रहता है, किन्तु अग्नि के सम्बन्ध से सारी मिलावट दूर होकर स्वच्छ स्वर्ण रह जाता है। जीव कर्म का सम्बन्ध अनादि अनन्त नहीं, अनादि सान्त है, क्योंकि हेतु मिलने पर टूट जाता है। ऐसा भव्य के होता है। जाति भव्य और अभव्य के कर्म का सम्बन्ध अनादि अनन्त होता है। वहाँ पृथक् करने के हेतु का अभाव रहता है। जो आत्मा सम्यग दर्शन प्राप्त कर लेता है वह, स्वभाव का कर्त्ता माना जाता है। वह व्यवहार नय की दृष्टि है। शुद्धनय की दृष्टि से तो आत्मा सदैव स्वभाव का ही कर्त्ता है पर परिणाम का नहीं। कर्म ही उस आत्मा के स्वभाव की शक्ति को अपनी ओर खींचकर अपने कार्य में लगाता है, अतः कर्म मल को दूर करने पर शक्ति व्यक्त हो जाती है, तब आत्मा स्वाभाविक क्रिया करने लग जाता है और मुक्त हो जाता है।

असद्भूत भावकर्म का कर्त्ता निश्चय से जीव नहीं है। व्यवहार नय सदा जीव और कर्म दोनों का ग्राहक है।

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है-भगवन्! जीव और कर्म व्याप्यव्यापक भाव से है या अन्य भाव से? कर्म का कर्त्ता जीव निश्चय से नहीं है तो वह फिर द्रव्य कर्म-पुद्गल कैसे करेगा? क्योंकि चेतन तो पृथक् सत्तावान् है। जहाँ व्याप्य व्यापक भाव होता है; वहाँ तन्मयता होती है? जैसे ज्ञानादिगुण उपर्युक्त भाव से आत्मा के है। कर्म. जीव का व्याप्य व्यापक कहना अनीति है, क्योंकि कर्म जड़, और आत्मा चेतन है। दोनो का उपर्युक्त भाव हो नहीं सकता। अतः जीव कर्म का कर्त्ता कैसे माना जाय? यदि मानो तो दोनों का अनादि अनन्त सम्बन्ध भी मानना होगा। तब मुक्ति का ही अभाव हो जायगा। अतः हमारी शका दूर करने की कृपा कीजिये?

उत्तर—आत्मा के कर्म जनित अशुभ परिणाम ही कर्म के निमित्त है और वैसे अशुभ परिणामो के निमित्त पूर्वकर्म है, जो आत्मा के साथ अनादिकाल से बद्ध है। दोनो का परिणामो और कर्मो का हेतु हेतुमद् भाव है। पर भावो की अज्ञानदशा के कारण भ्रम वश जीव, स्वभाव समझता रहता है। जैसे चुम्बक की आकर्षण शक्ति का निमित्त कारण लोह है, लोह के आकर्षण का निमित्त चुम्बक है; किन्तु चुम्बक और लोह पृथक् पृथक् है। वैसे जीव और कर्म पृथक् होते हुये भी संयोग होने से परस्पर आवद्ध होते रहते हैं। निश्चयनय की अपेक्षा से दोनो स्व स्व धर्म के ही कर्त्ता और भोक्ता हैं।

मीमांसक मत

इस मत की मान्यता है कि, जीव ब्रह्म पृथक् है और प्रकृति ही सुख दुःख, ससार भ्रमण, जन्म मरण, मुक्ति आदि की कर्त्री है। ब्रह्मस्वरूप जीव इनका न कर्त्ता है न भोक्ता।

जैन दर्शन की मान्यता—यदि जीव सर्वथा पृथक् ही है, तो प्रकृति का सम्बन्ध कैसे होता है? प्रकृति ही संसार भ्रमणादि एवं मुक्ति, दोनो क्रिया

कैसे कर सकती है ? यद्यपि प्रकृति जड स्वरूप है, वह सुख दुःखादि की निमित्त हो सकती है, यह सत्य भी है, किन्तु मुक्ति की कर्त्ता प्रकृति नहीं हो सकती। सुख दुःखादि प्रकृति के कार्य और मुक्ति आत्मा का कार्य है। कर्त्ता अपना कार्य कर सकता है और भोक्ता भी वही है। प्रकृति का कार्य—मुक्ति नहीं, क्योंकि मुक्ति रूप कार्य का भोक्ता आत्मा है, अतः मुक्ति आत्मा का काम है। हम निश्चय नय की दृष्टि से ब्रह्म-आत्मा को सदा ज्ञान का कर्त्ता भोक्ता मानते हैं। मुक्ति का कर्त्ता भी आत्मा को मानते हैं, किन्तु व्यवहारनय की दृष्टि से कर्म का भोक्ता और कर्त्ता भी स्वीकार करते हैं। ब्रह्म प्रकृति का सम्बन्ध भी अनादि है। ऐसा होने पर भी ब्रह्म जब सुषुप्ति से जागृतावस्था में आता है, तब स्वयं से प्रकृति को पृथक समझ कर उससे मुक्त होने का प्रयत्न करता है और मुक्त होता है।

ब्रह्मवादी मत

इनके मत में ब्रह्म एक है और वह सदा अखण्ड ध्रुव ज्ञान मुद्रा धारक ब्रह्मलोक में निवास करता है। जगत् में जितने जीव हैं, वे सब उसी के अंश हैं। ये जीव जड़ और ज्ञाता दोनों प्रकार के हैं, येही नये-नये शरीर धारण कर संसार में भ्रमण करते हुए सुख दुःख भोगते रहते हैं। उस पूर्ण ब्रह्म की जब इच्छा होती है, तब उस अंश को अपने में मिला लेता है। इस प्रकार शुद्ध ब्रह्म स्वाधीन है। उसे कर्मवश सुख दुःख होता है, ऐसा कौन कहता है ? वह तो नित्य मुक्त है। ऐसे ही अंश भी होते हैं।

जैन दर्शन द्वारा उक्त मत का निराकरण—

ब्रह्म का स्वभाव इच्छातीत रहित होता है, वह दोषों से मुक्त, शिव रूप माना गया है। इच्छा स्वयं ही दोष रूप है। आत्मा असंख्य प्रदेशी है। विशाल अखण्ड प्रदेश युक्त रहता है। वह अंश रूप से पृथक् होता है, तो अखण्ड कैसे ? और अंश खण्ड रूप बनने का क्या हेतु है ? इच्छा को हेतु मानोगे तो इच्छा दोष रूप होने से शुद्ध ब्रह्म की मान्यता कैसे होगी ? अतः

ब्रह्म आत्मा अनन्त है। वे सभी चैतन्य स्वरूप, ज्ञानपुञ्ज, नित्य निरय भाव युक्त, शुद्धनय की अपेक्षा से पर भाव के अकर्त्ता अभोक्ता हैं। उनमे जो कर्म सहित है, वे विभाव काम क्रोधादि के वशीभूत हो रहे हैं, वे ससारी है, जन्म मरण के चक्र में निरन्तर भ्रमण करते हुये चारो गतियो मे कृत कर्म के भोग स्वरूप सुख दुःख भोगते रहते हैं। जो कर्म मुक्त हो गये है, वे शुद्ध सिद्ध बुद्ध, मुक्त मात्र ब्रह्म स्वरूप हैं। साराश कि जीव अनन्त हैं, स्वतन्त्र सत्ता वाले है। किसी एक ब्रह्म के आधीन नही।

बौद्धमत की मान्यता—

बौद्ध क्षणिकवादी है। इनकी मान्यता है कि संसार के सभी पदार्थ जीव भी क्षणस्थायी है। जो जीव प्रथम क्षण मे था, वह द्वितीयक्षण मे नही रहता। जो प्रथम क्षण मे कर्त्ता रूप है, वह पलट जाने मे भोक्ता भी अन्य हो जाता है। वे पर्याय को ही सर्वतोभाव से द्रव्य मान लेते हैं। और अपने इस आग्रह के कारण जीव के अखण्ड ज्ञानगुण की धारा को ही काट देते हैं।

जैनदर्शन की अपनी मौलिकता है। वह वस्तु-द्रव्य को नित्य सदा काल स्थायी मानता है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से द्रव्य नित्य है, पर्याया-र्थिकनय से अनित्य है। परिवर्तन पर्याय मे होता है न कि द्रव्य मे। यदि जीव द्रव्य क्षण क्षण मे नया नया बने तो स्मरण की शृखला छिन्न भिन्न न हो जाय। चैतन्य का स्मरण ज्ञान अखण्ड धारा रूप है, उसका प्रवाह रुक जाने पर यह स्मरण कि 'अमुक कार्य मैंने अतीत समय मे किया था' 'यह मेरा किया हुआ है' 'भविष्य मे मैं अमुक कार्य करूँगा' इत्यादि। क्योंकि बाल्यावस्था मे किया गया कार्य युवा और वृद्धावस्था मे भी स्मरण मे आता रहता है। एकान्त रूप से जीव को क्षणिक मानने से यह कैसे सम्भव होगा? अत क्षणिकवाद युक्ति, युक्त नही। एक द्रव्य मे उत्पादव्यय और ध्रौव्य की मान्यता सत्य व युक्ति युक्त है। द्रव्य ध्रुव निश्चल रहता है, पर्यायो मे प्रत्येक समय उत्पाद व्यय होता है।

नैयायिकमत और उसका निराकरण

नयायिक उद्यम को प्रधान मानता है, उसका कहना है कि सभी कार्य पुरुषार्थ से होते हैं। सन्तानोत्पत्ति, कृषि, उद्योग शिल्प, भोजन आदि सभी कार्य पुरुषार्थ से सम्पन्न होते हैं। भाग्य की पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म की मान्यता मिथ्या है। पुरुषार्थ के बल पर ही सब कुछ होता है। इसीलिए हम विश्वनाथ ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानते हैं। उसी प्रकार सभी जीवों के उद्यम को ही सब कार्य के सम्पन्न होने में स्वीकार करते हैं। स्याद्वादी जैनसिद्धान्त ऐसी एकान्त बात नहीं कहते हैं। जैन भाग्य, पुरुषार्थ आदि सभी स्वीकार करते हुए वर्तमान व्यावहारिक कार्यों के उद्यम को आत्मा का शुद्धकार्य स्वीकार न कर पूर्वकर्म जनित संस्कार का फल मानते हैं। चैतन्य का शुद्ध वीर्य जाग्रत होने पर तो वह परभाव-व्यावहारिक कार्यों का कर्त्ता ही नहीं रहता। कर्म के उदय से जो उद्यम होता है, वह तो कर्म का ही बन्ध कराता है। आत्मा का वास्तविक उद्यम रत्नत्रय ज्ञानदर्शन चारित्र को जो निजगुण हैं, उन्हें उज्ज्वल बनाने का होता है। जीव और जड़ के भेदज्ञान के अभाव में आत्मा में परभाव समस्त व्यावहारिक कार्य का स्वामित्व कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अहंभाव—'मैं कर्त्ता भोक्ता हूँ' रहता है।

कालवादी मत विमर्श

कालवादी का कहना है कि जगत के सभी कार्य काल के आधीन हैं और समय पाकर ही होते हैं। मनुष्य भी समय पाकर बालक से तरुण बनता है तरुण वृद्ध बनता है। ऐसे ही सभी वस्तुयें—वृक्षादि भी समय पाकर फलते फूलते हैं। काल के प्रभाव से ऋतु परिवर्त्तन, जन्म मरणादि भी होते हैं। कालचक्र के सुषम दुषम, रवि चन्द्र ग्रहादि का उदयास्त, जन्म मरण, संसार भ्रमण और मुक्ति भी कालाधीन है।

अनेकान्तवाद काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत और पुरुषार्थ इन पांचों समवायों के मिलने पर सभी कार्यों का होना स्वीकार करता है वह इन पांचों

मे से एक का भी अभाव हो तो कार्य नहीं होता" ऐसा मानना है। केवल एक का ग्रहण एकान्तवाद है, जो मिथ्या है अत स्याद्वाद दृष्टि से ही यथार्थ ज्ञान होता है। किसी एक पक्ष को ग्रहण करने मे वस्तु का ज्ञान नहीं होता। सभी पक्षो से देखना विचारना चाहिये। चार-प्रमाण, सप्तनय, चार निक्षेप, और सप्तभङ्गी से वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है।

मीमासक कर्म को व वेदान्त ब्रह्म को मानते है। वे मात्र द्रव्यार्थिक नय ग्रहण करते है। क्षणिकवादी पर्यायार्थिकनय मात्र ग्रहण करते है। नैयायिक कर्मवादी है और उद्यम के पुरुषार्थ के ही पक्षपाती है। शैव कालवादी है। पाँच समवाय मे से केवल काल को ही लेते हैं। इस प्रकार ये सभी अशग्राही है। स्याद्वादी सर्वग्राही है और एक ही वस्तु को अनेकता मे ग्रहण करते है, अर्थात् पूर्णता से जान सकते हैं। अशग्राही तो उन सात चक्षुहीनो के समान है, जो हाथी का एक-एक अवयव-शुण्डा राजदन्त पद पुच्छादि पकड कर उतना ही गज मान बैठते हैं। चक्षुयुक्त मनुष्य तो सर्वाङ्गसम्पूर्णगज को देखता है और उसे ही गज स्वीकार करता है। मात्र अग विशेष को नही। उसी प्रकार अनेकान्तवादी भी वस्तु की पूर्ण जानकारी को ही वास्तविकज्ञान स्वीकार करते है।

प्रकृति को ही मुख्यरूप से स्वीकार करने वाले, व्यवहार नयग्राहक मात्र है। एकान्त ब्रह्मवादी निश्चयनय को ही ग्रहण करते है। क्षणिकवादी पर्यायार्थिक नयमात्र के और उद्यम-पुरुषार्थवादी भी इसी के ग्राहक है, कालवादी की भी वास्तव मे यही मान्यता है।

यथार्थ मे ये सभी जीव के परिणाम हैं। प्रकृति-कर्मजनित व्यवहार है। निश्चय से प्रत्येक आत्मा नित्य, ज्ञान स्वरूप है। पर्यायनय अध्रुव-अनित्य होने से सूक्ष्म और परिवर्त्तनशील है. पुरुषार्थ आत्मा का कर्तत्व स्वभाव है। भले वह स्वभाविक हो या वैभाविक। जो कि आत्मा के सम्यग्-ज्ञान और मिथ्याज्ञान पर निर्भर है। काल प्रवाह रूप चक्रगति वाला है। इस प्रकार आत्मा-जीव अनेक अगयुक्त है। किसी एक अंग को ही ग्रहण न कर

सर्वाङ्गग्राहक ही बुद्धिमान् है। एक ग्राहक बुद्धिहीन है या कुबुद्धि है। बुद्धिमान् व्यक्ति युक्तियुक्त प्रमाणसिद्ध, वस्तुज्ञान को स्वीकार करते हैं। और स्याद्वाद ही ऐसा करने मे समर्थ है, एकान्तवाद नही।

स्याद्वाद का स्वरूप

१ स्यादस्ति २ स्यान्नास्ति ३ स्यादस्तिनास्ति ४ स्याद्वक्तव्य ५ स्यादस्ति अवक्तव्य ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य ७ स्यादस्तिनास्ति युगपद् अवक्तव्य। यहाँ स्यात का अर्थ कथचिद् किसी अपेक्षा से किया है। कदाचित् नही।
१ स्यादस्ति जीव। जीव कथचित है, अर्थात् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभाव की अपेक्षा से है।

२ स्यान्नास्ति जीव। जीव कथचित नही है, अर्थात परद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा नही है।

३ स्यादस्तिस्यान्नास्ति जीव। जीव कथचित है, कथचित नही है। अर्थात जीव मे स्वद्रव्यादि से अस्तित्व और परद्रव्यादि से नास्तित्व है। यहा क्रमश विधि और निषेध की विवक्षा की गयी है।

४ स्यादवक्तव्यो जीव। जीव कथचित अवक्तव्य है। यहाँ विधि निषेध दोनो की एक साथ विवक्षा होती है, तब दोनो को एक साथ बताने वाला कोई शब्द न होने से जीव को अवक्तव्य कहना पडा है।

५ स्यादस्ति अवक्तव्योजीव। केवल विधि और एक साथ विधि निषेध की एक साथ विवक्षा होने से 'जीव है और अवक्तव्य है,' यह भग बनता है।

६ स्यान्नास्ति अवक्तव्यो जीव। 'जीव नहीं है और अवक्तव्य है' यहाँ निषेध मात्र तथा एक साथ विधिनिषेध की विवक्षा होने से ऐसा कहा जाता है।

७ स्यादस्तिनास्ति युगपत अवक्तव्योजीव। यहाँ क्रमश विधिनिषेध दोनो की और एक साथ विधि निषेध दोनो की विवक्षा से 'जीव है,' नही है और अवक्तव्य है।

इसी प्रकार जीव विषयक नित्य, अनित्य। सत्, असत्। वक्तव्य, अवक्तव्य। एक अनेक आदि सभी अभिमत हैं। द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से जीव नित्य भी है, तो पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से अनित्य भी है। इसी अन्यत्र भावना कर लेनी चाहिये। ऐसा यह सच्चिदानन्द आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्र की साधना से स्वरूप को प्रकट कर पूर्ण शुद्ध सच्चिदानन्द मय बन कर सदा के लिए सिद्ध बुद्ध मुक्त बन जाता है।

श्रीमद् ने जीवस्वरूप का निरूपण इस तृतीय द्वार के पूर्वार्द्ध मे किया है। अब तृतीय द्वार के उत्तरार्द्ध मे जीव को कर्ममुक्त करने की साधना का निरूपण कर रहे हैं।

तृतीय द्वार का उत्तरार्द्ध

जीव को नवीन २ गुणमय जानना सविकल्पज्ञान है। एक चिन्मय स्वरूप का ध्यान कर्मनाशकारक है निर्विकल्प ज्ञान है।

आत्मा अनादिकाल से अज्ञान बना हुआ, रागद्वेषरूप मदिरापान करता रहा है, इससे अज्ञान मे महान् वृद्धि होती रही और विषयकषाय ने वशीभूत कर आत्मा के ज्ञानगुण को अवरुद्ध कर दिया तब विभाव ने अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया है। निर्विकल्प शुद्ध आत्म स्वरूप के ध्यान के प्रताप से साधक आत्मा, अज्ञान के प्रबल प्रताप को नष्ट कर देता है, कर्म की शृंखला को तोड मरोड डालता है, अज्ञान के साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर ज्ञान का साम्राज्य स्थापित कर लेता है, अत निर्विकल्प ध्यान ही मुक्ति का हेतु है। यही ध्यान ज्ञान का धाम असीम आनन्दमय, कर्म के पाश को तोडने वाला, अनन्तवीर्यशक्ति सम्पन्न, क्षायिक भाव के योग्य, उज्ज्वल परिणामो से युक्त, मोह का नाशक, आत्मा का रक्षक है। उसीका अवलम्बन लेकर अपने ज्ञान का प्रसार करना चाहिये। आत्मा के स्वरूप को प्रकट करने मे यही ध्यान एकान्त रूप से हेतु है। यह अज्ञानतम और त्रयताप को नष्ट करने वाला है।

यह शरीर भी हेय-त्यागने योग्य है। अनादि अनन्त ज्ञान ज्योतिर्धर, निज को पर का कर्त्ता मानता हुआ, अज्ञान का निवास स्थान बन गया है,

उसे स्वरूप का भान तक नहीं रहा। ज्ञान दृष्टि छूट जाने से शरीर पर ही स्तन की भ्रांति हो गयी है। मैं पर का पुद्गल कर्म का 'कर्त्ता हूं' ऐसा भ्रम हो गया है। जैसे वारुणी पी लेने पर मानव भान भूल जाता है, वैसे ही मोह की मदिरा पीकर आत्मा भी भान भूल रहा है, स्व पर का भेद करने का ज्ञान नहीं है। हे आत्मन्! जैसा इन्द्रिय विषयों के भोग पर अनुराग है वैसा आत्म-ज्ञान पर अपने चित्त में अनुराग रख! यही मुनि का मार्ग है। दृढ़ धारणा कर कि जो रूपी है—(शरीरादि) वह मैं नहीं हूं। मैं तो अरूपी चिन्मय हूं! अतः समस्त पर भाव को छोड़कर एक मात्र आत्मा के स्वरूप का विचार कर जिससे इस देह का ममत्व छूटे और आत्मतत्त्व पर दृढ़ विश्वास हो जाता है। यह शरीर नश्वर है इस अपना मानने वाला मूर्खशिरोमणि है। यह तन पुद्गल-जड़ का पिण्ड है तू आनन्दमय चेतनरूप है। यह अनमेल मिलन अर्थात् जड़ चेतन का मिलान न जाने किस प्रकार हो गया है। हे चेतन! तू वैसे तो मांस अस्थि रुधिर, मलमूत्रादि देखकर घृणा करने लगता है! किन्तु उन्हीं मांसादि के समूह शरीर को अपना मान कर उसके बाह्य स्वरूप पर मोह करता है। यह तेरी कितनी अधिक घोर अज्ञानदशा है! अतः हे चतुर! विचक्षण! तुम इस शरीर का मोह छोड़ दो, इसका मोह तुम्हें आतुर-आतुर व्याकुल बनाता है किन्तु यह गंधर्वनगर के समान-अर्थात् आकाश में बादलों की नगर रचना के सदृश क्षणभंगुर देखते देखते नष्ट हो जाने वाला है। रूप की शोभा भी बादलों की छाया के समान क्षणिक है। इस तन में बहुत दिनों के शव (मुर्दे) की सी दुर्गन्ध आती है, यह रोगादि दूषणों का घर कहा गया है। अतः शरीर की ममता छोड़ दो तो तुम में आत्मज्ञान की ज्योति जगमगा उठे। शरीरादि की ममता छोड़ उसे आत्मा से भिन्न अनुभव कर आत्मा मुक्ति के समीप पहुंच जाता है। इस शरीरादि पर वस्तुओं पर अपनत्व का अभिमान रखना ही सब भ्रमणका मूल है।

निस्पृह भावरखना ही श्रेयस्कर है। निस्पृह भाव ही पाप नाशक, मुक्तिमार्ग का साथी, दोषादि से सर्वथा विमुक्त, अध्यात्मनृपति, परमसुख रूप

नवतत्त्व के विकल्प तीनो योगों—मन, वचन, काया के संकल्प, इस आत्मा मे रहते हैं, इनमे योगो मे रहते हुए भी आत्मा नित्य इनसे अस्पृष्ट रहता है, ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मो से वेष्टित होने पर भी आत्मा चेतना का स्वामी स्व स्वरूप मे ही रहता है। यह सुमति का स्वामी है, इसमे कुमति का अंश भी नही, अपने ही ज्ञानादि घन मे मग्न रहता है। परम अखण्ड ज्योति नित्य सद्रूप है। ऐसा जिनेन्द्र कथित आत्म स्वरूप ही देवचन्द्र ग्रन्थकार को इष्ट है। इसी तत्व को जैनशास्त्रो मे नित्य अनित्य, एक अनेक, सद् असद् आदि नयो से बतलाया है, आत्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म, स्थूलातिस्थूल, अरूपी, अगन्ध कहा गया है। लोकालोक मे तीन कालवर्ती होने वाले समस्त द्रव्यो के उत्पाद व्यय ध्रौव्य को ज्ञान से देखने जानने की शक्ति इस आत्म तत्त्व मे रही हुयी है। सकल-विश्व उस ज्योति मे समाविष्ट है। ऐसा परमात्म स्वरूप आत्मा उक्त महात्म्य को धारण करने वाला है। वही परम आनन्दरूप, देवचन्द्र ने भी जान लिया है।

यद्यपि जीव अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मफल को भोगता है; किन्तु सम्यक् ज्ञान दर्शन युक्त सम्यक्त्वीजीव के बन्ध नही होता, क्योकि वह वैराग्य भावयुक्त है, बन्ध का कारण आसक्ति भाव है: अत ज्ञाता अबन्धक रहता है।

शंका—आपने ज्ञाता को काम-भोग सुख दुःखादि भोगते हुए भी अबन्धक कहा, यह हमारे समझ मे नही आता, ज्ञाता को पूर्ण अबन्धक मान लेने पर तो सारा व्यवहार जो मुनि, आर्याएँ श्रावक-श्राविकाएँ जो भी व्रत नियम, तप, जप, इन्द्रियदमन, दान शील, दयापालन आदि करते है, वे सब निष्फल बेकार कही जायँगी। और बेकार होने से ये सब व्यावहारिक क्रियाएँ, अत्यन्त कठिन होने के कारण साधकजन छोड देंगे। इस प्रकार तो चतुर्विध सङ्घ का ही लोप हो जायगा। फिर तो सभी लोग प्रमाद सहित होकर निष्क्रिय बन बैठेंगे; जबकि जिनागम ज्ञानयुक्त पुरुषार्थ द्वारा ही मुक्ति कीप्राप्ति मानता है फिर अकेला ज्ञान मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है?

समाधान—तुम्हारी शंका उचित है, हमने धार्मिक—क्रिया त्याग तपादि का निषेध कब किया ? वह तो आस्रव को-नवीन कर्मों के आगमन को रोकने और सत्तागत कर्मों को क्षय करने के लिये आवश्यक ही हैं। किन्तु वे ज्ञान-पूर्वक हों तभी मोक्षफल दायिका है अतः ज्ञान की प्रधानता है। हम तो क्षायिक सम्यग्दृष्टी की बात कर रहे हैं।

जैसे विषवैद्य जाङ्गुली विद्या से विकार को जान कर उसका उपचार करके उसे दूर कर देता है। वह स्वयं विष को चूसता है, परन्तु वह मूर्च्छित नहीं होता है। जैसे नाग विषहारक मन्त्र का ज्ञाता अपना अङ्ग नाग के मुख में डाल देने पर भी स्वयं अदंशित-दंश रहित रहकर नाग से युद्ध करता है, वैसे ही ज्ञानीजन पूर्व कर्म संयोग में भोग तो भोगते हैं, किन्तु अलिप्त भाव में रहने से उसे बन्ध नहीं होता। चक्रवर्ती भरत, श्रीकृष्ण और श्रेणिक आदि ऐसे ही आत्मा थे। अनासक्त भाव से रहने से भरत को आरिसा भवन में अनित्य भावना करते हुए केवलज्ञान हो गया। श्रीकृष्ण व श्रेणिक आदि ने तीर्थंकर नाम कर्म बन्ध किया एकावतारी बने यह ज्ञान का ही प्रताप था।

एक और दृष्टान्त से भी हम समझाते हैं। जैसे किसी वन में दावानल लगा। वह फैलते हुए अपनी ज्वालाओं से ग्राम नगर, वन उपवन गिरि आदि को भस्म करने लगा। तब किसी मन्त्र सिद्धजन ने मन्त्र द्वारा अग्नि शक्ति को बांधकर उसे बुझा दिया, फिर सारा ताप मिट जाता है। और उस मन्त्र को जानने वाले स्वयं को अभिमन्त्रित कर अग्नि की दहन तापन शक्ति से अभिभूत न होकर उसमें उछलते कूदते इधर उधर घूमते नृत्य करते हैं फिर भी वे जलते नहीं, वैसे ही ज्ञानी अपनी ज्ञानशक्ति से बन्ध की शक्ति को अवरुद्ध करके पूर्व कृत निकाचित कर्म को भोगता हुआ भी अबन्ध रहता है।

प्रश्न फिर भी जिज्ञासु शिष्य कहता है-आपने कहा सो सच है, फिर भी मेरे मनका सन्देह दूर नहीं हो रहा है। मूढजनके समान सम्यग्दृष्टी भी भागरीति से भोग भोगता हुआ 'अबन्ध है, आपकी यह बात कैसे मान लें ? सर्वथा अबन्ध

आज तक यह भेदज्ञान जाना ही नहीं । न चित्त में उसे धारण किया । अब जान लिया है तो अवश्य करूँगा ।

सर्व जड-पर हेय है, उपादेय तो मात्र आत्मा है । शुद्ध सम्यग्दृष्टि वाला सम्यक्त्वी आत्मा प्रकृति से विरक्त भिन्न रहता है, वह कर्म का कर्ता नहीं रहता मिथ्यादृष्टि क्रूर बुद्धि ही इन पर-जड रंग में रंगा हुआ, पर-कर्मबंधन करता व भोक्ता है । भेद ज्ञान करने में विलक्षण व्यक्ति और सब त्याग कर स्वपर का विवेक ही जागृत करते हैं यही जैनदर्शन की रहस्यपूर्ण साधना है । भेद ज्ञानी जन पर-जड से मुक्त, ज्ञानादिगुणों से युक्त हैं वे स्वयं को पर का भोक्ता न मानने से मुक्त है । ऐसे मुक्त भावयुत आत्मा का 'देवचन्द्र' ग्रन्थकार अथवा देवों में चन्द्रमा के समान साधक, ध्यान करते हैं ।

चंचल मनरूप समुद्र में से विकल्प तरंगावलि उत्पन्न होती है उसमें से उठने वाले संकल्पमय काले बादल चेतन रूप चन्द्र को आच्छादित कर लेते हैं, जिससे ज्ञान चेतना चन्द्रिका अवरुद्ध हो जाती है । कर्म चेतना और कर्मफल चेतना के कारण आत्मा पर का कर्त्ता भोक्ता स्वयं को ही मानने लगता है ।

आत्मा तो आत्मभाव से पूर्ण, ध्रुव, निश्चल चेतनायुक्त ज्ञानगुण का स्वामी है । वही ध्याता व ध्येय है, उसमें भेद नहीं, चिदाकार का ध्यान ही करना चाहिए, पर-जड की तो खोज करना ही त्याज्य है अर्थात् जड से सुख पाने का लक्ष्य परित्याग करके चेतन में रमण करने से ही अव्याबाध सुख का अनुभव होता है । अतः चंचलता छोड कर स्थिरैक भाव में रहकर चित्त में उठने वाली अनङ्ग-कामदेव की तरङ्गों को न उठने दो । ऐसा करने वाला ही सादि अनन्त और महान् आत्म सुख का अनुभव करता हुआ अभय हो, श्रेष्ठ प्रधान मोक्षपद को प्राप्त करता है ।

परगुण-विषय कषायादि के अभिमुखज्ञान वाला चेतन परवश हो जाता है । स्वगुण ज्ञानादि के अभिमुख रहने वाला आत्मगुणों में लीन बना हुआ स्वतन्त्रता का अनुभव करता है ।

अत ज्ञान को स्थिर करने का उपाय है देह ममत्व का त्याग । जैसी प्रीति देहादि पर है वैसी चेतनगुणों ज्ञानादिपर हो जाय तो फिर बंधन नहीं होता। वास्तव में आत्मा अबंध भेदज्ञान से बनता है ।

भेदज्ञान का चिंतन इस प्रकार करें—जडता स्वभाव वाले देहादि मेरे नहीं, मोहमदोन्मत्त जीव ही इन पर ममत्व भाव रखते हैं। मैंने तो स्वरूप का ज्ञान कर लिया है, इसमें ये सब परद्रव्य—देहादि मेरे धन नहीं मैं इनका स्वामी नहीं हूँ, मैं तो ज्ञानादिगुणों का स्वामी हूँ ये ही अनन्त स्वरूप वाले मेरे मन्त्र सग रहने हैं। अतः अंतरंग कषायादि और बहिरंग देहादि जो पर हैं, उनका संग छोड कर इन्द्रियसुख प्राप्ति की परछाँई भी अपने ऊपर न पड़ने दूँगा। ऐसे दृढ़ संकल्प वाला हे चेतन ! तू बन जाय तो तुझे कर्मपुञ्ज का बंधन कभी नहीं होगा।

वस्तुत, आत्मा निष्क्रिय है, किन्तु जैसे निष्क्रिय लोहा अयस्कान्तमणि चुम्बक का संयोग पाकर सक्रिय हो जाता है—उस चुम्बक की ओर खिंचता है, वैसे ही सकर्मा आत्मा जिसके कर्म राग लगा हुआ है, वही सक्रिय बनता है, कर्ममुक्त आत्मा नहीं ।

आत्मा स्वरूपतः शुद्ध बुद्ध चिन्मात्र निर्द्वन्द्व मुमुक्षु—नित्यानन्द प्रमोद आत्मरूप अनादिनिधन निर्मल परब्रह्म पूर्ण परमज्योति परम अगम अक्रिय, महाशान्त अविनाशी अज परमात्मा गुणाकर नित्य निरंजन अम्लान, जिन भगवान् है, किन्तु कर्मसंग से ज्ञान को भूल कर पुनः पुनः कर्म की ही संगति करता हुआ कस्तूरीमृगवत् संसार अरण्यों में भ्रमण कर रहा है।

जिसे आत्मज्ञान हो जाता है वह चेतन की धारा में लीन रहकर स्वयं को 'कर्म व कर्म से काय से पृथक् हूँ, स्याद्वाद भावयुक्त सदा महान् हूँ।'

इस प्रकार ज्ञानदृष्टि और उत्तम निर्दोष चारित्रयुक्त आत्मास्वरूप की एकता करता हुआ कर्मदल का शोषण कर मुक्त हो जाता है । किसी किसी को सन्देह होता है कि एक आत्मद्रव्य में तीन गुण ज्ञान दर्शन चारित्र कैसे रहते हैं ? उसका समाधान निम्न प्रकार से समझना चाहिए ।

जैसे सुवर्ण मे पीतत्व, स्निग्धत्व और गुरुत्व निरन्तर रहते हैं। अग्नि मे दहनत्व, पचनत्व, तपनत्व ये तीनो विशेषतायें सदा रहती है। जल मे शीतलता, द्रवता, निर्मलता ये तीन स्वाभाविक गुण हैं, जो सदा रहते हैं। इसी प्रकार आत्मा मे भी तीनो गुण—ज्ञान दर्शन, चारित्र सदैव रहते हैं। निश्चय से उपर्युक्त तीन द्रव्यो—सुवर्ण, अग्नि और जल मे उनके कथित गुण उनमे अभेद-तद्रूप से नित्य विद्यमान रहते हैं, वैसे ही आत्मा के तीन गुण सदैव उसी मे हैं कभी पृथक् नही हो सकते।

व्यवहारनय की दृष्टि मे श्रुतादि रूप मे पृथक् की कल्पना की जाती है। अभ्यास द्वारा प्राप्त होते है ऐसी मान्यता की जाती है। किन्तु वास्तव मे चेतन की शक्तिरूप मे चेतन मे ही है, अभ्यास मे प्रकट होते है। ये गुण—सवेदनादि अन्य द्रव्य मे हैं ही नही अत जड को कितना ही अभ्यास करावें तब भी उसमे से किसी भी प्रयत्न द्वारा प्रकट नही किये जा सकते।

जब आत्मा अज्ञान दशा मे रहता है तब मोहकर्म काम भोग का लालच देकर अपनेवश मे कर लेता है और आत्मा काम भोग के लिए सदा विकल रहता है। भेदज्ञान—जीव और जड को पृथक् मानकर ज्ञान, मोह के प्रभाव को दूर कर देता है। इस प्रकार भेदज्ञान निर्दोष अमल अखण्ड धारावाही रूप से सद्‌बुद्धि आत्मा करता है यही ध्यान कर्म के जाल को नष्ट करने मे प्रबल कारण है। इसे करने पर आत्मा अकल सकल अन्य से सर्वथाभिन्न, जगत् में रहा हुआ भी जल मे कमलवत् निर्लेप रहता है।

एक आत्मबुद्धि मुक्ति और देहात्म एकत्वबुद्धि ससार, भव भ्रमण बढाने वाली है अतः देह बुद्धि त्याग कर स्वआत्मगुण-ज्ञानादि से प्रेम करना चाहिए। सुख-दु ख दोनो पुण्य व पापरूप पुद्‌गलस्कन्ध है, इन पर आत्म बुद्धि रखना ही कर्मबन्ध हैं।

यहाँ जिज्ञासु शिष्य प्रश्न करता है कि—

"दुष्ट भाव पाप का हेतु और अच्छा भाव पुण्य का हैतु है" अत दोनो

प्रकार से कर्मबन्ध के हेतु पृथक् पृथक होते ह । पाप के उदय से असाता व पुण्य के उदय से साता का अनुभव होता है, दोनों में क्षार व मिष्ठ के समान स्वाद भेद है। पाप कुगति और पुण्य सद्गति का दाता है। इनमे ये प्रत्यक्ष ही भेद दृष्टिगोचर होता है । पाप सभी को अनिष्ट और पुण्य सभी को इष्ट लगता है। सक्लेश शुद्धि निर्मल परिणामा से इनका भेद स्पष्ट दिखता है। अत पाप हय और पुण्य तो उपादेय ही मानिये। इसमें क्या दोष है ?

समाधान—

पुण्य पाप दोनो कर्मजाल रूप हैं, हतु रस गति फल मे वस्तुत भेद नही है, जैसे कम्परोग पाप फल और अकम्परोग पुण्यफल है किन्तु है दोना ही दु खरूप और विनाशी । मिथ्यादृष्टि जीव को ही पुण्य पर रुचि भाव और पाप पर अरुचि भाव उत्पन्न होता है यह उसकी विपरतता है। उसकी ऐसी बुद्धि रहती है। सम्यग् दृष्टि जाव तो दोना को जड रूप और अज्ञानरूप मान कर आत्मा को इनसे पृथक देखता है। वह दोना को ही हय और मात्र शुद्ध आत्मस्वरूप को उपादेय मानता है।

पाप से विमुख और पुण्य क अभिमुख रहन वाला सुगति की आकाक्षा रख कर कुगति से भयभीत रह कर मैं कर्त्ता हूँ' मैंन अमुक काय किया' इत्यादि अह बुद्धि से मदोन्मत्त रहता हुआ विपरीतरीति ससार भ्रमण की वृद्धि करता है। वह स्व आत्मा के स्वरूप को नही पहचान कर भ्रम भाव मन मे रखता है। देह धनादि को अपना मानता हुआ कम का ब ध करता है। ऐहिक और पारलौकिक मात्र पौद्गलिक भौतिक सुख की ही आकाक्षा रखने वाला मिथ्यादृष्टि है।

ऐसा मिथ्या दृष्टि आत्मज्ञान स अभिज्ञ न होन के कारण पर जड वस्तुओ म निजत्व भाव रखता हुआ उस ही सवस्व मानने के भ्रम म रहता है कम का कहर गजब आपत्ति उसी पर आती है वही कम बंध करता है। चित्त म वक्रता रखता हुआ सुख की आकाक्षा से मत्त श्ववत् निरतर ससार रूपी नगर म भोग रूप अन्नादि की याचना करता फिरता है। इन काम

भोगादि की जो हानि के दुर्गति केस्थान है, अशुचि-जगत् की वमन कीहुयी वस्तु के समान हेय घृणास्पद है, उनसे उसे ग्लानि नही होती, जैसे विप खाये हुए व्यक्ति को निम्ब भी मधुर लगता है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि को भोग सुखदायी लगते है। वह लोटन कबूतर के समान उलट-उलट कर उलटी चाल से उडता है अपने मिथ्यात्व के कारण सुलटी चाल नही चलता अर्थात् सरलभाव के अभाव में इसकी गति मुक्ति की ओर नही होती। पुन. पुनः भोगो की वान्छा करने के कारण ससरण ही करता रहता है।

मिथ्यादृष्टि मोहगत जीव को यह भी भान नही रहता कि जीवन अञ्जलिगत नीरवत् क्षण-क्षण सदा कम हो रहा है, यह शरीर और मानसिक शक्ति-स्मरण शक्ति भी क्षण-क्षण क्षीण होते जा रहे हैं। काल के स्वभाव का कभी विचार तक नही आता कि यह कभी मृत्यु रूप मे आयगा। दूर-दूर की सोचना रहता है, माता, पिता, भ्राता, भगिनी, पति, पत्नी के सग मे सुख की कल्पना मे लीन, धर्म का रहस्य न जानने के कारण भ्रम से घिरा हुआ, ज्ञान हीन क्रिया करता हुआ पुण्य की रटना लगाये रहता है। "सारे भौतिक सुख क्षणिक और परिणाम-फल मे दु खप्रद हैं" ऐसा बार-बार सुनता हुआ भी, स्वाभिमुख नही बनता। पर जडादि के ही सुख को सम्मुख रखता हुआ सदा दु ख मे अटता-भ्रमण करता रहता है।

पौद्गलिक सुखो की-विषयसुखो की प्राप्ति के लिये वह बडे-बडे ग्रन्थो का अध्ययन कर विद्वता प्राप्त करके लोकरञ्जनार्थ सुन्दर शैली मे प्रवचन कर यश भागी तो बनता है, पर मगशैलपाषाणवत् स्वय उस ज्ञान से आर्द्र नही बनता वह आत्मज्ञान रहित ही रह जाता है। मौन धारण करता है, योगसाधना करता है, अश्व व खर-गदहे के समान व्रत नियमादि के बन्धन मे बँधकर कष्ट सहता है। विविध प्रकार के आसन भी सरकस के अभिनेता अभिनेत्री के समान करता है। परलोक के सुखो की अभिलाषा मे इस लोक सुखो का त्याग कर देता है। प्राणायाम की साधना से पवन को साध लेता है, बडा हर्षित होता है यह सब क्रियाएँ बिना आत्मज्ञान के करता हुआ रहने से उसका मिथ्यात्व नही हटता

कदापि सम्य मुक्ति का नहीं, सांसारिक भोगों का है। अतः वास्तव में मिथ्यात्व बुद्धि पापमय-मननवृत्ति है जो पर जड़ की वस्तु का स्तवन चारा करती है। किन्तु चोरवत बहुत अधिक चोरी की सम्पत्ति एकत्र करता हुआ स्वयं के संताप की वृद्धि करके भी अंत में एक दिन दंड का दुःख का भागी बनता है। अतः पर वस्तु सदा हेय और आत्मगुण ही उपादेय है। अहो! कितना आश्चर्य है!! पर वस्तु भोगादि के प्राप्ति के लिए अज्ञानीजन कौनसा हीन, कौनसा अत्यन्त वकृतर आचरण नहीं करते। किन्तु ये सब परभाव हैं मेरे नहीं! ऐसी सुबुद्धि उन्हें नहीं होती।

वचन, युक्तियाँ, चित्त शरीर की क्रान्ति मन की स्थिति संकल्प विकल्पादि, हित अहित रति अरति, अन्तःपुर नगर श्रेष्ठ भोजन वस्त्र आदि सब वस्तुयें जो नयनगोचर हैं, और पुण्य पापादि आयत नृत्यादि स्त्रीपुरुष नपुंसक वेद इत्यादि सभी तो हेय हैं, इनमें नित्य संयोग वियोग होता रहता है, ये आत्मा के स्वरूप नहीं पुद्गल के रूप हैं, जो बनते बिगड़ते रहते हैं, इनमें ममत्व ही आत्मा के भ्रमण का मुख्य कारण हैं। आत्मा तो सदैव अमर ज्ञानादि गुण युक्त अपने ही गुणों का स्वामी है वही मात्र उपादेय है।

पुण्य व पाप दोनों ही पुद्गल दल हैं गुड़ खल मिट्टी का ढेला और मणिरत्न सब जड़-पुद्गल की व्यक्ति भेद है। अर्थात् पुद्गल ही विविध रूप में भिन्न रहे हैं अतः पुण्य पाप दोनों का अवरोध करने में स्व का बोध होता है यही ज्ञान पर समस्त व्याधियां नष्ट होकर समाधि होती है रागद्वेष रूप दोष दूर हो जाते हैं। जैसे ईंधन का अभाव होने पर अग्नि स्वयं बुझ जाता है बीज के अभाव में वृक्ष नहीं बनता है, मूल बीज नष्ट हो जाने पर वृक्ष गिर जाता है, उसी प्रकार भाव कर्म रागद्वेष बुद्धि का नाश हो जाने पर ज्ञान चेतना प्रकाशित हो जाती है और आत्मा श्रेष्ठपद-सादि अनन्त स्थिति वाले सिद्धपद को वरण कर लेता है।

हे आत्मन्! आदिकालीन कर्म उपाधि के बंधन के कारण ही तुम्हारी प्रीति पर जड़ादि पदार्थों में मग्न रही है और स्वरूप पर भीलरगवत् जीव पर

रागद्वेष का रग लगा हुआ है इसीलिये तुम जड की सम्पत्ति अपनी स्थापन कर दूसरे की पूँजी दबाकर रखने की चेष्टा कर रहे हो तो यह भी स्पष्ट ही चौर्य-कर्म है जो तुम्हारे करने योग्य नही है और इसी कारण तुम ब्रह्मस्वरूप हो कर भी जड सग से कर्म के कर्त्ता बन गये हो, ऐसी मूर्खता क्या त्यागने योग्य नही है ?

जैसे रेशम का कीडा या मकडी अपने ही मुँह से निकली हुयी लाल या रेशे रूप जाल मे बँध जाते है, वैसे ही आत्मा भी अपने भाव मे बँध जाता है।

नित्य आत्मा को ईश्वरकृत मानने वाले ज्ञानविहीन मत-क्रियावाद के मत मे मत्त बने हुये, ईश्वर की इच्छा से आत्मा का भवभ्रमण-स्वर्ग नरक तिर्यञ्च मनुष्यगति मे गमनागमन कहते है विविध योनियो उत्पत्ति स्थिति और प्रलय-मरण मानते है। उन्हे सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्र के उपासक कहते है कि ईश्वरकृत और ईश्वरेच्छा से भ्रमण न करके आत्मा स्वय ही कृत कर्म के अनुसार सुगति कुगति मे भ्रमण करता है कृत कर्म का भोक्ता भी आत्मा ही है। अन्यकृत अन्य नही भोगता यह तो प्रत्यक्ष ही देखते है। वस्तुत. आत्मज्ञान के अभाव मे जीव अज्ञानी बना हुआ, विविध भाँति के कार्य करने से कर्म बाँधता हुआ, कर्मफल भोगता है। सप्तधातुमय शरीर के संग बंधा हुआ है।

शंका—एक ही कार्य को अनेक कर्त्ता करते और अनेक कार्यो को एक ही कर्त्ता करते दिखलाई पडते है। ऐसे ही जीव भी स्व पर आदि आदि कार्यो का कर्त्ता है और जीव का कर्त्ता ईश्वर है। ऐसी मान्यता रखने मे क्या दोष है। और जीव भी पर कर्त्ता माना जाय तो क्या हानि है ?

समाधान—ईश्वर कर्तृत्वादि मान्यताओ को निराकरण युक्ति आदि-पूर्वक पहले कर चुके है। यहाँ तो जीव को पर का कर्त्ता मानने का प्रश्न विचारणीय है। परका कर्त्ता जीव को मानने पर तो आत्मा और जड का कभी विभेद ही नही हो सकेगा, न जीव मुक्त होने योग्य सिद्ध हो सकेगा। और यह

किसी भी आत्मिक स्थान को अभीष्ट नहीं, अतः आत्मा स्वस्वरूप का ही कर्ता है, पर रूप जड़ादि का नहीं। हाँ! जब तक आत्मा को स्वरूप का भान-सम्यग्ज्ञान द्वारा नहीं होता तब तक वह स्वयं को पर का कर्ता मानता रहता है। वास्तव में कर्म, कर्म का कर्ता और आत्मा आत्म गुणों का कर्ता है। सभी पदार्थ स्व स्व कार्य के कर्ता हैं।

यह चेतन अज्ञान दशा में किये गये कर्म के कारण ही दुर्गति में पड़ता है, जैसे अन्धा व्यक्ति या उन्मत्त विष्ठा से भरे गटर में गिर जाता है।

आत्मज्ञान ही मुक्ति का कारण है, उसी का ध्यान मुक्ति का हेतु है। आत्मज्ञान के बिना मुक्ति कभी नहीं हो सकती। दान, दया, तप जप, उपशम, यम नियम, इन्द्रियदमन आदि ये क्रियाएँ तुच्छ फल वाली हैं अतः आत्मज्ञान से आत्माभिमुख मुक्ति लक्ष्य से की जाने वाली क्रिया, दोनों का एकत्र करके मन वचन काया के योगों का निरोध करके सिद्धि स्थान मुक्ति प्राप्त होती है यही आत्मज्ञान निर्वाण का स्थान है। केवलज्ञान का हेतु है। अन्य सभी आत्म ज्ञान बिना के ज्ञान ध्यानादि क्रियाएँ वाणी में दोष वाले कहते हैं। दोष मुक्त वचन वीतराग के ही होते हैं।

आत्मस्वरूप की भावना इस प्रकार की जाती है —

धर्मास्ति एवं अधर्मास्तिकाय नामक दो द्रव्य एक एक और असंख्यात प्रदेशी हैं। काल औपचारिक द्रव्य अनंत समयात्मक, और आकाश भी अनन्त प्रदेशात्मक है। जीव और पुद्गल अनंत हैं। एक एक द्रव्य में अनन्त अनन्त गुण हैं। एक एक गुण के अनंत पर्यायों की परिणति होती रहती है। षड् द्रव्यों में ज्ञाता एक जीवद्रव्य है जो सभी ज्ञेय को जानने की शक्ति वाला है, अन्य सभी ५ द्रव्य अचेतन हैं। मैं चेतन द्रव्य जीव हूँ मैं अनादि अनन्त निर्द्वन्द्व, महानन्दरूप, महादयावान हूँ। आत्मा का वास्तविक स्वरूप चिन्मय है, जो सदैव वैसा ही रहता है। मैं भी आत्मा हूँ पर से मेरा क्या लेना देना ?

नवतत्त्व के विकल्प तीनो योगो—मन, वचन, काया के सङ्कल्प, इस आत्मा मे रहते हैं, इनमे योगो मे रहते हुए भी आत्मा नित्य इनसे अलिप्त रहता है, ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों से वेष्टित होने पर भी आत्मा चेतना का स्वामी स्व स्वरूप मे ही रहता है। यह सुमति का स्वामी है, इनमे कुमति का अंश भी नहीं, अपने ही ज्ञानादि धन मे मग्न रहता है। परम अखण्ड ज्योति नित्य सद्रूप है। ऐसा जिनेन्द्र वर्णित आत्म स्वरूप ही देवचन्द्र ग्रन्थकार को इष्ट है। इसी तत्व को जैनशास्त्रों मे नित्य अनित्य, एक अनेक, सद् असद् आदि नयो से बतलाया है, आत्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म, स्थूलातिस्थूल, अरूपी, अगन्ध कहा गया है। लोकालोक मे तीन कालवर्ती होने वाले समस्त द्रव्यो के उत्पाद व्यय ध्रौव्य को ज्ञान से देखने जानने की शक्ति इस आत्म तत्त्व में रही हुयी है। सकल-विश्व उस ज्योति मे समाविष्ट है। ऐसा परमात्म स्वरूप आत्मा उक्त माहात्म्य को धारण करने वाला है। वही परम आनन्दकन्द, देवचन्द्र ने भी जान लिया है।

यद्यपि जीव अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मफल को भोगता है; किन्तु सम्यक् ज्ञान दर्शन युक्त सम्यक्त्वीजीव के बन्ध नहीं होता, क्योंकि वह वैराग्य भावयुक्त है; बन्ध का कारण आसक्ति भाव है; अत ज्ञाता अबन्धक रहता है।

शंका—आपने ज्ञाता को काम-भोग सुख दुखादि भोगते हुए भी अबन्धक कहा, यह हमारे समझ मे नहीं आता, ज्ञाता को पूर्ण अबन्धक मान लेने पर तो सारा व्यवहार जो मुनि, आर्यायें श्रावक-श्राविकाएँ जो भी व्रत नियम, तप, जप, इन्द्रियदमन, दान शील, दयापालन आदि करते है; वे सब निष्फल बेकार कही जायँगी। और बेकार होने से ये सब व्यावहारिक क्रियाएँ अत्यन्त कठिन होने के कारण साधकजन छोड़ देंगे। इस प्रकार तो चतुर्विध सङ्घ का ही लोप हो जायगा। फिर तो सभी लोग प्रमाद सहित होकर निष्क्रिय बन बैठेंगे; जबकि जिनागम ज्ञानयुक्त पुरुषार्थ द्वारा ही मुक्ति कीप्राप्ति मानता है फिर अकेला ज्ञान मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है?

समाधान—तुम्हारी शंका उचित है, हमने चारित्र—क्रिया त्याग तपादि का निषेध कब किया ? वह तो आस्रव का—नवीन कर्मों के आगमन को रोकने और सत्तागत कर्मों को क्षय करने के लिए आवश्यक ही है। किन्तु ये ज्ञान पूर्वक हो तभी मोक्षफल दायिका है अतः ज्ञान की प्रधानता है। हम तो अविरत सम्यक्त्वी की बात कर रहे हैं।

जैसे विषवैद्य जाङ्गुली विष के विकार को जान कर उसका उपचार करके उसे दूर कर देता है। वह स्वयं विष को चूसता है परन्तु वह मूर्च्छित नहीं होता है। जैसे नाग विषहारक मन्त्र का ज्ञाता अपना अङ्ग नाग के मुख में डाल देने पर भी स्वयं अदंशित-दंश रहित रहकर नाग से युद्ध करता है वैसे ही ज्ञानीजन पूर्व कर्म संयोग से भोग तो भोगते हैं, किन्तु अलिप्त भाव में बरतने से उन्हें बन्ध नहीं होता। चक्रवर्ती भरत श्रीकृष्ण और श्रेणिक आदि ऐसे ही आत्मा थे। अनासक्त भाव में रहने से भरत को आदर्श भवन में अनित्य भावना करते हुए केवलज्ञान हो गया। श्रीकृष्ण व श्रेणिक आदि ने तीर्थंकर नाम कर्म बन्ध किया एकावतारी बने यह ज्ञान का ही प्रताप था।

एक और दृष्टान्त से भी इसे समझाते हैं। जैसे किसी वन में दावाग्नि लगी। वह फैलते हुए अपनी ज्वालाओं से ग्राम नगर, वन उपवन गिरि आदि को भस्म करने लगी। तब किसी मन्त्र सिद्धजन ने मन्त्र द्वारा अग्नि शक्ति को बाँधकर उसे बुझा दिया, फिर सारा ताप मिट जाता है। और उस मन्त्र का आराधक स्वयं को अग्निमर्दन कर अग्नि की दहन तापन शक्ति से अभिभूत न होकर उसमें उछलते कूदते इधर उधर घूमते नृत्य करता है फिर भी वे जलते नहीं वैसे ही ज्ञानी अपनी ज्ञानशक्ति से बन्ध की शक्ति को अवरुद्ध करके पूर्व कृत निकाचित कर्म को भोगता हुआ भी अबन्ध रहता है।

प्रश्न फिर भी जिज्ञासु व्यक्ति कहता है-आपका कहना तो सच है फिर भी मेरे मन का भ्रम यह दूर नहीं हो रहा है। मुझ जैसे सामान्य सम्यक्त्वी भी भोगरीति से भोग भोगता हुआ 'अबन्ध है, आपकी यह बात कैसे मान लें ? सर्वथा अबन्ध

मानना न शास्त्र सम्मत है न युक्ति सङ्गत ! उपर्युक्त दृष्टान्त व्यावहारिक है, 'मन्त्रशक्ति युक्त पुरुष ऐसा कर सकते हैं' यह सत्य है किन्तु आत्मा जब तक संसार वर्ती है तब तक सर्वथा अबन्धक होता नहीं, वीतराग के भी एक साता वेदनीय का बन्ध तो माना ही है फिर चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सर्वथा अबन्धक रहता है ! यह कैसे माना जाय ? अत: पुन: स्पष्ट करके समझाने की कृपा करिये ?

समाधान—जैसे कोई सद्‌गृहस्थ या ब्राह्मण वणिक् किसी राजा की सेवा मे आजीविकार्थ सेवक बनकर रहता है, राजा की आज्ञा हुयी कि मद्य लाओ ? हमे व हमारे परिजन मित्रादि को भी पिलाओ । तब वह आज्ञा पालन के लिए मद्य लाता है, चषक प्याले आदि पात्रों में भर-भर कर नृपति आदि सबको देता है; स्वयं को तो मद्य गन्ध भी रुचिकर नहीं लगती, किन्तु परवश होने से राजाज्ञा का पालन करता है; वैसे ही पूर्वकृत कर्मबन्ध सम्यक्त्वी जीव ज्ञाता होने पर भी निकाचित भोग्य-कर्म तो भोगता है, किन्तु अरुचिपूर्वक भोगने से निरासक्त भाव के कारण अभिनव कर्म का बन्ध नहीं होता ।

निश्चयनय से आत्मा सिद्ध के समान है क्योंकि जिनेश्वर भगवान् ने सभी द्रव्यों को स्व-स्वभावगत माना है; अतः आत्मा स्वरूप से कर्ता स्वभाव का ही है, परभाव-कर्मादि का नहीं ।

सर्वद्रव्य स्वभाव से रहते हुये स्व स्व कार्य करते हैं कोई द्रव्य अन्य द्रव्य का कार्य नही करता; किन्तु अनादिकालीन कर्म सम्बन्ध के कारण मिथ्यात्वबुद्धिवश आत्मा मूढ बना हुआ सदा पर भावलीन उन्ही विषयकषायादि मे जो परभाव है; अहंबुद्धि ममत्वबुद्धि रखता है । कर्म के भ्रम मे पड़ा हुआ आत्मा इस शरीर पर प्रेम बढाता है । जब आत्मज्ञान होता है तब शरीरादि पर वस्तुओ से प्रेम हट जाता है और यह अनैतिक कार्य त्याग देता है । रागद्वेष को दूर कर सदैव पर-वस्तुओ पर निर्ममत्व बना रहता है ।

सम्यक्त्व हो जाता है तब आत्मा मे फिर कर्म का रंच मात्र का प्रपञ्च नहीं रहता, भोगादि से अत्यन्त अरुचि बढ जाती है। बन्धक स्वभाव, जो आत्मगुणो को भुलाकर परभाव मे रमण कराता है उसे खींचकर निकाल देता है। शुद्ध स्वभावी बन जाता है। परभाव समुद्र मे चिरकाल से बार-बार शीघ्र तीव्र रागद्वेष भ्रमर मे डूबने का चिर कालिक स्वभाव नष्ट कर देता है। ज्ञान के प्रकृष्ट किरण दीप्त कर अज्ञान-तिमिर का नाश कर देता है। आठ कर्मो के मल को साफ करके आत्मा के आठ गुण वरण कर लेता है। ऐसे परमज्योतिर्मय, सदा-काल जयवन्त रहने वाला, आत्मा अज्ञान तिमिर को नष्ट करने के लिये सूर्य समान है। यह शुद्ध स्वरूप ही ध्येय है।

कर्त्ता भोक्ता रूप अभिमान के विचारो का भार उतार कर स्थिर भाव प्राप्त कर लेता है। आत्म गुणों का घात करने वाले घाती-कर्मों के बन्ध को तोड़ डालता है, अमन्द आनन्दकन्द हर्ष के समूह को प्राप्त कर लेता है। फिर शुद्ध, शान्त, अनन्त, अहत जिसे दूसरा नाश न कर सके अथवा त्रुटि रहित पूर्ण, विचित्रवृत्ति ससारी जीव द्वारा अननुभूत, परज्योति, सत्य, नित्य सत् रूप रहना है। सर्व भेय अभेय ज्ञेय द्वारा हेय कर-त्याग कर शुद्ध बुद्ध ब्रह्म स्वरूप मेरा आत्मा सदा काल रहा हुआ है। यह आत्म भावना करने से मुक्ति की दशा का अनुभव होने लगता है। यही मुक्ति का मार्ग है। वैराग्य का सौभाग्य उसे ही प्राप्त होता है जो रत्नत्रयी–ज्ञान दर्शन चारित्र हैं उन्हीं के स्वरूप आत्मा का सवेदन अनुभव करके मोह का उच्छेद करने की प्रणाली ग्रहण कर लेता है। आत्मज्ञान की कला जानने के लिये निर्मल बुद्धि से सवर–संयममय बन जाता है। वह शरीर धारणार्थ और कर्म के उदय से जो सुखदुःखादि होते हैं, या मन वचन काया की शुभ प्रवृत्ति होती है, वह भी कर्मोदय से होती है।

'मैं कर्म का कर्त्ता भोक्ता हूँ' ऐसा अज्ञान जितने काल तक मुझे रहा उतना काल शुद्धात्म का अनुभव न होने से मैं अज्ञान का भवन बना रहा। अब सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव के सरस वचनामृत का पान कर शान्त रस का अनुभव कर रहा हूँ। इसी वचन सुधा के चिरकाल पान करने से अनेक आत्मा सुस्थित हो सुधृति धारण कर श्रेष्ठ अजर अमर परब्रह्मपद को प्राप्त कर चुके हैं।

वस्तुत आत्म ज्ञान के अभाव में स्वयं को पर का कर्ता भोक्ता मानता रहता है। एक आत्मा के ज्ञान बिना भव भ्रमण करता है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप जिनवचन से जान लेने पर अकर्ता अभोक्ता भाव उदित होता है। ये रागद्वेष कर्मोदय के कारण से होते है "ये मेरी सम्पत्ति नहीं, मैं इनका स्वामी नहीं हूँ" ऐसा भाव चित्त में धारण करने वाला साधक स्वयं को इन से भिन्न मानता हुआ रहे तो वह संसार में भ्रमण नहीं करता। एक दो भव में अवश्य मुक्त हो जाता है।

जब तक अज्ञानज य गाढ अन्धकार रहा मैं कर्मबन्ध में निमित्त बनता रहा तब तक विभाव ही रूप रहे जिससे रागद्वेष की रेखा पर एकीभाव की एकरूप ता बुद्धि रही। अब गिरिनदी के उपल के समान चिरकाल से जल के प्रवाह में टक्करें खाते खाते उपल जैसे गोल बन जाता है वैसे मैंने भी त्रिकरण से भेदज्ञान प्राप्त कर लिया है। तब मैंने पर-जड की रीति त्याग दी और स्वात्म पूर्ण ग्रहण से अब मेरी विच्युति व विकृति नहीं रही, अपने ज्ञानादि गुणों का वरण करने को ध्रुव निश्चल बन गया हूँ। ऐसा संकल्प करने से शीघ्र मुक्त होता है।

अहो! मैं अनादि काल से अज्ञान निद्रा में लीन सुप्तावस्था में पर जड वस्तुओं का ही चिन्तन इच्छा और भोग करता रहा। किसी शुभ कर्म के उदय से जाग्रत होकर तत्त्वज्ञान भी पाया। किन्तु जैसे दरिद्र को सम्पत्ति मिल जाने पर वह अहंकारी बन जाता है, बस मुझे भी अहंकार हो गया कि मैं ज्ञानी बन गया हूँ। उसी अहंभाव के कारण कर्तृत्व भोक्तृत्व बुद्धि का भ्रम हो गया और ज्ञान असद् बन गया। शुद्ध आत्मा का विचार नहीं किया।

आत्म ज्ञान अत्यन्त गहन विषय है। आत्मा विराट और अनहद किन्तु अस्पृष्ट स्पृष्ट, निरन्तर स्पृष्ट रूप से बाह्यात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा रूप में है। आत्म स्वरूप की विभूति अनन्त और शान्त है, वह प्रकट हो जाने पर जिसकी जड पुद्गलपदार्थों से प्रीति नष्ट हो जाती है, उसे ही स्याद्वाद द्वारा स्वानुभूति का आस्वादन कर आनन्द होता है। वह ज्ञानादि अगण्य सम्पत्ति के

महामौन मे लीन हो जाता है। वह बुद्धिनिधान निर्वाण स्थान सम्प्राप्त करने को सदा सावधान-अप्रमत्त हो जाता है ऐसा ही अप्रमत्तभाव हमारा इष्ट है।

आत्मज्ञान के बिना महाव्रत पालन, तप करना, आतापना लेना, यम नियम आसन प्राणायामादि योग साधना का प्रबल अभ्यास करना, क्षुधा तृषा शीत ताप भूमिशयन अनुकूल प्रतिकूलादि बाईस परिषहो मे भी अचल रहना, इत्यादि सर्व साधनाएँ निष्फल निरर्थक शून्यवत् (मुक्ति फल की अपेक्षा) रहती है। एक आत्मा के जान लेने पर सब जान लिया जाता है—"जे एग जाणइ, से सव्व जाणइ" ऐसा आगम वाक्य है। अत. भेदज्ञानयुक्त आत्म ज्ञान से ही सफल होता है। अत. निरन्तर अनन्त तेज : पुञ्ज मे शोभित, ज्ञानमय दृष्टि से अज्ञानमल रहित अचल अमल तत्त्व का ही ग्रहण करना चाहिये, इससे ससार कर्दम मे रहता हुआ भी आत्मा कमलवत् निर्लेप रहता है। आत्मानुभव के सुख की तुलना मे इन्द्र चन्द्र चक्रवर्ती पद के सुख सुधा के सामने क्षार के स्वाद के समान है। "मै परमात्मा स्वरूप हूँ" अर्थात् जैसा परमात्मा है, वही मेरा स्वरूप है। 'सोहं' के ध्यान से ही वह अगम परब्रह्म गम बनता है—जानने योग्य बनता है। अन्तरात्मा इसी मे लीन बनते है।

सम्यग दर्शन रहित बहिरात्मा, सारे आगमो का अभ्यास कर जगत मे अभिमान से विचरते है, स्वय को पण्डित कहलाने मे गौरव का अनुभव करते हुये विविध भांति के वाद विवाद करते रहते है वे अचेत हैं। उनका देहाध्यास-देहात्म एकत्व भाव छोडते नही। केवल पढने लिखने मे समझ लेने से कुछ नही होता। उसका पढा हुआ पाठ (तोता रटन्त) मात्र ही रहता है।

मैं बहुत समय पर्यन्त अज्ञानी रहने से अपने रूप को ही भूल गया था; वह अब स्मरण मे आ गया यह वीतराग की वाणी का ही प्रताप है; मैं भी हुं तो ससार मे ही, किन्तु सबके-परभाव के मध्य रहता हुआ भी भव के जाल से मुक्त हो गया हुं। मै सत्य ज्ञान चेतनावान् अत्यन्त उज्ज्वल सान्त अनन्त सज्ज्ञान मुझे मिल गया है। हे सज्जनो। आप भी उन ज्ञानबीज निरजन अक्षय अनुपम स्याद्वादमय श्री जिनवचनो का वास्तविक रहस्य जानने का प्रयत्न करो।

आत्मा से आत्मज्ञान का मथन कर तब भानु के प्रकाश के समान आत्मज्ञान की ज्योति प्रकट हो जाती है और क्षण क्षण बढ़ने लगती है। जैसे बाँसों का परस्पर घर्षण करने पर अग्नि प्रकटती है, वैसे ही आत्मज्ञान से ऐसी ज्योति प्रकट हो जाती है। इसी कारण आत्मज्ञानी आत्ममगन, देशविरति सुव्रती है, और महाव्रतधारी भी क्षपणश्रेणी पर आरोहण करते मुक्ति सदन में पहुंच जाते हैं। अत आत्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य मुक्ति मार्ग नहीं है। सच्चे साधक तो आत्मपाठ ही पढ़ते हैं।

आत्मा की सुप्त दशा जब रज्जु म सर्प का भ्रम हो जाता है वैसे ही अज्ञानी मिथ्यादृष्टि को देहबुद्धि रहती है वह शरीर पर ही आत्मबुद्धि रखता है। इससे उसका भ्रम बढ़ता ही रहता है।

अज्ञान के चक्रव्यूह म फंसा हुआ आत्मा मणिपी के समान अन्य की ऐसी रूप जड वस्तुओं का पकड़न दौड़ता है। भव रागद्वेष की मोह बेड़ियों म जकड़ा हुआ आत्मा अज्ञान निद्राधीन रहकर ज्ञान दृष्टि म तेज को दबा देता है। इससे पर वस्तु पर, आत्म बुद्धि रख कर भयभीत हुआ स्वयं का भी उन्हें अर्पित कर देता है, उन्हें ही परम मित्र मानता है। इस प्रकार अपने गुण प्राप्त किये बिना आत्मा अनन्त भव भ्रमण करते हुए स्वगुण को तिरोहित करता रहता है।

ज्ञान चेतना की जाग्रत दशा

ज्ञान चेतना जाग्रत होने पर आत्मा अपनी अनन्त शक्ति—'जिसमे लोकालोक समा सकते हैं' जाग्रत हो जाती है। इस आत्मा का स्वरूप जान लेने पर षड्द्रव्य के सभी भाव जान लेता है। क्योंकि ये षड्द्रव्य आत्मा के अनुगामी कहलाते हैं क्योंकि आत्मा ही मात्र चेतन द्रव्य है शेष तो अचेतन जड हैं। एक आत्मा के ज्ञान बिना सर्वशास्त्रों की जानकारी केवल श्रम है। जिस व बुद्धि रहती है अन्य शास्त्रों का अभ्यास तुष खण्डनवत् निष्फल है। ज्ञान हीन क्रिया भी इसी प्रकार निष्फल है। उस आत्मज्ञान का अनुभव होने पर संसार का भय पलायन कर जाता है, आत्म विश्वास पर अनन्त प्रेम जाग उठता है। जैसे सूर्योदय होने पर सारा जगत् जगमग हो उठता है, अन्धकार

का नाश होने पर घटपटादि सभी पदार्थ दृष्टिगोचर होने लगते है, इसी प्रकार आत्मज्ञान के तेज से रागद्वेष की ग्रन्थी टूट जाती है, अभिनव कर्म नही लगते और मुक्ति सम्मुख ही दिखने लग जाती है। ऐसा परमानन्दकन्द देवचन्द्र को सुखकर अर्थात् देवो मे चन्द्रवत् वीतराग देव जिससे अनन्त सुख का अनुभव करते है। धर्मात्मा व्रतिजन और मुनीश्वर इसी का ध्यान करते है।

आत्मा जब आत्मध्यानलीन रहता है, तब कर्मबन्ध रुक जाता है, क्योकि उसे अन्य कुछ भी कल्पना नही उठती। अग्नि मे ईंधन न डालें तो स्वयं बुझ जाती है। वैसे ही मन इन्द्रियादि रागद्वेष के अभाव मे विषय ग्रहण करते हुए भी आत्मा को बाँधने मे असमर्थ रहते है। अत परम सुख का स्थान आत्मगुणो मे लीनता है, अन्य साधनाएँ व्यर्थ हैं। यही सुन्दर निर्भयपद है और सब तो केवल जन-श्रुतियां हैं। यही शान्तरस और मुक्तिपथ है, इसे ही कर्म-वृक्ष को छेदने वाला कुठार समझो। यह आत्मा ही ज्ञानवान भगवान् श्रेष्ठ ज्ञानादिरत्नत्रयगुणयुक्त है। इसे ही भजो, इसी मे रमण करो, इसे ही जानने का प्रयत्न करो। किन्तु यह मार्ग सबसे दुर्गम है विरले ही चलकर उच्च-स्थान पर पहुँचते है।

हे ज्ञानिन्! तुम स्वयं ही अज्ञान के हेतु बने हुये हो। इसी से भव में भ्रमण कर रहे हो। पर के जड पुद्गलमय शरीरादि पदार्थो के प्रति कर्ता बुद्धि हो रही है। चित्त मे सुख सम्पत्ति पाने की तृष्णा लगी हुयी है। शुद्ध बुद्धि वाले मुनिजन आत्मा को जान उसी का ध्यान करके हुये निर्वाण प्राप्त करते हैं। यह आत्मा स्वयं ही अपना रक्षक तब बनता है जब कि अपनी चेतनता-ज्ञान चेतना का अभिलाषी बनता है, अतः ज्ञान चेतना मे ही रमण करो।

सम्यग्-दृष्टि जन भोगो का संयोग निकाचित कर्मवश मिलने पर भोगते तो है, किन्तु गृहस्थ रहते हुये भी विरक्ति भाव है, आत्म भावना से भावित रहते हुये श्रेष्ठ आत्मज्ञान की कला की अर्चना-पूजा करते है। वे मोह कर्म की कारा को तोड़कर निकल जाते हैं। संसार के सुखो मे परिचय नही रखते।

उनम प्रसन्न नहीं होत। अपन हृदय म सम्यक् प्रकार स आत्म स्वरूप का ध्यान करत हुय कम के भ्रम को निश्चय ही नष्ट कर देत हैं।

जिन के निराचित भाग कम नहीं होते व मवरयागी बन जाते हैं। नि रागी व्यक्ति के समान वे कडवी औषधियो का काढा पीना निरर्थक समझते है। आतुरता दिल चतुर व्यक्ति जसे देह का नीरोग रखने के लिये कुपथ्य आहार विहार नहीं करते वस ही वे त्यागीजन भी आत्मा को नीरोग रखने के लिये विषय कषायादि कुपथ्य का सेवन नहीं करत। ज्ञान मोह के अभाव में चेतन अपने नि मयमूर्ति चेतना का सुख ही स्मरण रखते है और भोगा का सयोग होन पर भी नहीं भोगत। एसे स धुजन सम्यक ज्ञान को ही चित्त मे धारण करते हैं।

अन्तर तत्व को आत्मा को देख लने पर सूर्योदय होने से जस समस्त वस्तु प्रकाशित हो जाती है वस ही स्वपर का स्वरूप आत्म ज्ञानी के सम्मुख प्रकाशित हो जाता है। वह ससार म रहते हुये भी जगत् की रीति विषय भोग नहीं करत त्याग देते है। अपने गुणो स उज्ज्वल बन जाते हैं। जब तक मोह की घेरी मे घुमता रहता है तभी तक भव क स्वप्न दखता हुआ उल्लसित होता रहता है। मोहनिद्रा स जागन पर तो अपनी यथाथ ज्ञानमय स्थिति का भान हो जाता है। शुद्ध निरजन ध्रुव चेतनमय आत्मा स्वय म ही समाविष्ट होजाता है।

एसे आत्मज्ञान का अभ्यास नहीं करता वह कम क भ्रम को सदैव बढाता रहता है पाँचो इन्द्रिया क विषय प्रपच म चित्त को फसा कर इन्ही स भ्रमरस की अपार वृद्धि कर लता है। अर्थात् विषय की असीम तृष्णा हो जाती है। उसके कम की उपाधि ही ललाट पर भाग्य म लिखी रहती है, इस जगत् मे नव नव वेश शरीर धारण कर सुख दुख भोगता रहता है। वही आत्मा जब आत्मज्ञान पा लेता है तब स्वरूप म रहकर परम आन द रस की प्राप्ति मे असीम वृद्धि कर लेता है। क्योकि आत्मज्ञान की ज्योति मे ही ऐसा परम रस स्फुरित होता है जिसमे अद्‌भुत रसायन है जो सब दोषों को नष्ट कर देता है। लोकालोक का विलोकन करने वाला अमल निर्मल तेज स्वरूप है। हठ योगादि की क्रिया बिना ही उसकी साधना की जा सकती है। जिन्होंने आत्म

क्षारिध का विस्मरण नहीं होगा। श्रीमद् देवचन्द्र गणि का कथन है कि आत्म-देव की सेवा करके ही आत्मा इस संसार भ्रमण कराने वाले परन्ताप क्रोध लोभ मोहादि की टेव--आदत को दूर कर सकेंगे।

चेतन ज्ञानचेतना ममताभाव युक्त, परमधर्म, गुणों ज्ञानादि का स्थान है। ज्ञानादि की आराधना से श्रेष्ठ निर्वाण पद प्राप्त करता है, अतः ममता से प्रीति रखना उचित है।

कवि का लघुता प्रदर्शन

मैंने इस ग्रन्थ मे जैनागम उल्लंघन कर जो कुछ विरुद्ध कह दिया हो हो, उसे वे पण्डितजन जिनकी बुद्धि सुबुद्धि है, वे शुद्ध कर लहे, क्योंकि छद्मस्थ द्वारा भूल हो जाना स्वाभाविक है।

हे सज्जनो ! आप लोग हंस क्षीर न्याय से गुण ही ग्रहण करेंगे और दोषं रूप नीर का परित्याग कर देंगे। 'शास्त्र का अर्थ और तत्त्व अभिज्ञात कर स्वीकार करेंगे ऐसा विश्वास है। क्योंकि ज्ञानिजन बोधि-सम्यक्त्व प्राप्ति के लिये और निश्चय स्वरूप जानने के लिये जो शास्त्र-ग्रन्थ हैं उन्हे ही पढते है, और परजड की सम्पत्ति का त्याग कर देते हैं अर्थात् भौतिक शास्त्र नहीं पढते, उन्हे दूर से ही परित्याग कर देते है।

पूर्व कवि के गुण वर्णन

अच्छे शास्त्रो के पाठक, आठमद के निवारक 'हंसराज' हंसो मे राजहंस जैसे है, उस हंसराज के बनाये एक सौ अट्ठाइस कलश रूप यह ग्रन्थ था। वे हंसराज ज्ञान के ज्ञाता और दर्शन-सम्यग् दर्शन के स्वामी थे, तत्त्व परीक्षक, तत्त्व के निधान थे। उनका रचित ग्रन्थ निर्मल सर्वग्रंथो का सिरताज था। वह स्वपर भेद कारक, पर ब्रह्मभाव का धारण कराने वाला था। इसी का आश्रय लेते हुए यह ग्रन्थ भी शुद्ध श्रद्धावान् जनों के लिये सृजन किया गया है।

मैंने यह ग्रन्थ हिन्दू धर्म के पालक नृपति की राजधानी बीकानेर मे सुख पूर्वक चातुर्मास काल मे निवास करते हुये ज्ञानाभ्यासार्थं बनाया है।

ग्रन्थ प्रशस्ति गुरुपरम्परा कथन

वर्तमान काल मे विराजमान, सकलागमवेत्ता, विश्वविख्यात ज्ञानी, जिनेश्वर प्ररूपित धर्म पर स्थिर प्रतीतिवाल, अन्य मतो की वार्तो मे विरक्त,

प्रथम दादा श्री जिनदत्तसूरीश्वर द्वारा कथित श्रेष्ठ खरतर खरतर' शुद्ध रीति मे चारित्र के पालक, पुण्य प्रधान और सुमति के सागर श्री सुमतिसागर, साधुरंग रञ्जित श्री साधुरंग, और राजसार हैं वे सबपाठक शिर शेखर, गुणवान्, भव्यजन वे छत्रसमान, जायदश मे विचरण करते हैं।

उन्हीं के विनीत शिष्य, परमीति रहित साधुरीति नीति के धारक, सुन्दर गुणवान्, आत्मज्ञानी, आत्मधर्मधर श्रेष्ठ सिद्धान्तों के वाचक अत्यन्त उपशान्तचित्त 'ज्ञानधर्म' नामक प्रवर हैं। उनके शिष्य मानसरोवर के हंस सदृश 'राजहंस' अपर नाम दीपचन्द, उत्तम प्रधान गुणों ज्ञानदर्शनादि मे उद्यमवान् गुणगणों के धाम रूप हैं। उन्हीं के अन्तेवासी देवचन्द्र ने यह स्वचेतन के श्रीशाकृष्ण सदृश द्रव्यप्रकाश' ग्रन्थ बनाया है।

इस ग्रन्थ की रचना मे शुद्धमन वाले श्री दुर्गादास ने मुझे अत्यन्त सहायता की है, अपने मित्रों को समझाने के लिये इस ग्रन्थ की रचना करवाई है।

इस शास्त्र के श्रोता आत्मस्वभावरत बोध को दूर रखने वाले श्री मिट्ठूमल भैरवदास, नेउराम, मूलचन्द, ज्ञानचन्द, लसराज, श्रेष्ठ पारसपाषाण के स्वभाव वाले पारसमल, सोमचन्द आदि जीव-तत्त्व पर दृढ़ आस्था रखने वाले ज्ञानादि त्रिगुणवान् अध्यात्म ध्यानी 'मुलतान' नामक नगर के निवासी सुज्ञान श्रावक हैं। उन्हीं का धर्मप्रेम इस ग्रन्थ की रचना में प्रेरक है। इसमें शुद्ध पर्यायवर षड् द्रव्यों का ज्ञान है।

जो सरस अध्यात्मशैली को मानते हैं वे ही वास्तविक जन हैं। वे ही इस ग्रन्थ का वाचन मनन ज्ञानामृत रस पान के लिये करेंगे। गुणों का व लक्षणों का पहचानकर दृष्य का त्याग कर, शुद्ध चिदानन्द चिन्मय, अगम प्रत्ययतत्त्व का ग्रहण करना, वही आदेय है शेष सभी हेय हैं। शुद्धनय से परमात्मा का स्वरूप ही आत्मा का स्वरूप है। इस स्वरूप को जानकारी ही मोक्ष मार्ग है। ऐसा जानने वाला पर मोह नहीं होता फलत संसार मे भ्रमण नहीं करता। ग्रन्थ का मूल बीज उपादान यही है।

मद्य संख्या के भेद 'शुद्ध समय' अर्थात् १७६७ मे विक्रम संवत् का मान पूर्व समझना मद के भेद ७, संख्या के भेद ६ और आश्रव रा छः स्वरूप संयम